

वार्षिक
सदस्यता शुल्क
100/-

www.dbindia.org.in

प्रविड़ भारत

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र



गौतम बुद्ध

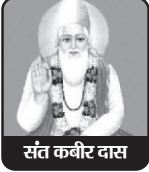
बाबा साहेब डॉ० अम्बेडकर

दिसम्बर-2021

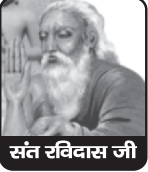
वर्ष - 13

अंक : 11

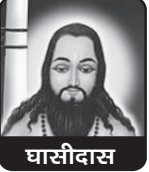
मूल्य : 5/-



संत कबीर दास



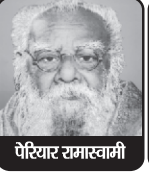
संत रविदास जी



घासीदास



बिरसामुण्डा



पेरियार रामास्वामी



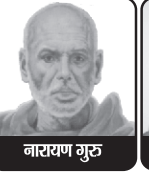
छत्रपति शाहजी महाराज



सन्त गाडगे



महात्मा ज्योतिबा राव फुले



नारयण गुरु



सावित्री बाई फुले



काशीराम

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074
संरक्षक मण्डल : मा. रामदीन अहिरवार (महोबा),
मा. राम अवतार चौधरी (सहा.अभि. जलकल विभाग),
मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम
(दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621

राज्य ब्यूरो प्रमुख उत्तर प्रदेश : सुनीता धीमान,
414/12, शास्त्री नगर, कानपुर (उ.प्र.),
मो. : 9450871741

सुनील कुमार, ढेलवा, गाजीपुर (उ.प्र.),
मो.: 9935363730, 9170836363

क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :

40/69, डी-5, श्यामलाल का हाता, परेड,
कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631

ब्यूरो प्रमुख कानपुर मण्डल :

पुष्पेन्द्र गौतम, मल्हौसी, औरैया, उ.प्र.

मो.: 9456207206

हरियाणा राज्य :

डा. रमेश रंगा, ग्राम-सराय, औरंगाबाद, पो.-
बहादुरगढ़, जिला-झज्जर (हरियाणा), 09416347052

कानूनी सलाहकार : एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड.
यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह
राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, रामऔतार वर्मा, एड.
सुशील कुमार, कानपुर

मध्य प्रदेश राज्य : पुष्पेन्द्र कुमार

कार्यालय : ग्रा. व पो.-रामदौरिया, जिला-छतरपुर

छत्तीसगढ़ राज्य :

दिलीप कुमार कोसले, मो. : 09424168170

दिल्ली प्रदेश : C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260,
हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट-III, बदरपुर, नई
दिल्ली-44, मो. : 09540552317

राजस्थान राज्य : रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर,
दुकान नं.-1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने,
अलवर, जिला-अलवर-301001,

मो. : 09887512360, 0144-3201516

चिरंजीलाल बैरवा (व्यावस्थापक) मेहरा आदर्श विद्या
मन्दिर, भीम नगर कालोनी, राज भट्टा, दिल्ली रोड,
अलवर, जिला-अलवर, मो.-09829855349

बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.-08058198233

संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :

ग्रा. व पो.-रिवई (सुनैवा), जिला-महोबा (उ.प्र.)

मो. : 9005204074, 8756157631

E-mail : dravinbharat1@gmail.com

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी

उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.-रिवई (सुनैवा), जिला महोबा
से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू
नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर से मुद्रित

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की
सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या
विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही
उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय
में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतः अवैतनिक
एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें -
भारतीय स्टेट बैंक, शाखा-पी.पी.एन. मार्केट, कानपुर
खाता सं.-33496621020 • IFSC CODE-SBIN0001784

गुरु रविदास और कबीर साहेब

कुछ विद्वानों ने कबीर साहेब को गुरु रविदास जी का गुरु बताया है। अब हम उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह देखेंगे कि कबीर साहेब क्या रविदास जी के गुरु थे? यदि नहीं तो क्यों? तात्कालिक परिस्थितियों के आधार पर कहा जा सकता है कि जब गुरु रविदास और कबीर साहेब ने सामाजिक समता के लिए स्थान बनाना शुरू किया था, तब समाज के बपौतीनुमा दादाओं की नाक में नकेल पड़ने लगी थी। ये दो शख्स तब के समाज को इस कदर नंगा कर देंगे। यह सोच पाना भी तब के डिब्बाबंद समाज के लिए नामुमकिन था। वास्तव में गुरु रविदास और कबीर साहेब जिस समाज में सांस ले रहे थे। वह समाज एक बुझा हुआ समाज था। ऐसे दकियानूसी वातावरण में उनका दम घुट रहा था। उनकी सांस-सांस अपने समाज से क्रांति स्तर पर विद्रोह कर उठी। बड़े-बड़े पुरोहित उनके हरफनमौला व्यक्तियों से जल भुन उठे थे। दूसरी तरफ भेड़नुमा शोषित समाज को उनकी बातों में बड़ा रस आ रहा था। उस दबे-कुचले वर्ग की रंगों का ठंडा पड़ चुका खून खौलने की सीमा तक सिर उठा रहा था।

काशीनाथ उपाध्याय जी लिखते हैं कि "संभवतः काशी के घोर कर्मकांडी और जातिवादी समाज को अंधविश्वास की दृढ़ स्थापित परंपरा से निकालने और सच्ची आध्यात्मिकता का मार्ग दिखलाने के लिए दोहरे झकोरे की आवश्यकता थी। इनका संदेश भी एक ही था।"

यह बात ध्यान देने की है कि कबीर साहेब और गुरु रविदास जैसे दो महान संत करीब-करीब एक ही समय और स्थान में प्रादुर्भूत हुए और उन दोनों ने नीच मानी जाने वाली जातियों में ही जन्म लिया। इन दोनों संतों की वाणी आम गरीब की झोंपड़ी से लेकर राजाओं के महलों तक गुंजी। बोखारे का राजा कबीर साहेब का शिष्य था और रविदास जी के शिष्यों में राजा पीपा और मीरा बाई की गणना होती है।

अनंतदास जी के अनुसार रविदास जी कबीर साहेब की गुरु तुल्य आदर देते थे - **तब रैदास विचारी बाता।**

गुरु समान कबीर बड़ भ्राता।

उपरोक्त दोहे से प्रमाणित होता है कि रविदास जी कबीर साहेब को गुरु के समान और बड़े भाई के समान मानते थे। इससे यह सिद्ध होता है कि रविदास जी ने कबीर साहेब से दीक्षा नहीं ली थी। रविदास जी को कबीर साहेब अपना शिष्य नहीं, बल्कि एक महान संत मानते थे। उन्होंने अपनी वाणी में लिखा भी है - **"संतन में रविदास संत है"**

अतः कबीर साहेब को रविदास जी गुरु के समान, अपने बड़े भाई के समान तो मानते थे, लेकिन वे आपस में गुरु-शिष्य नहीं थे। ये दोनों महान विभूतियाँ सहजिया संप्रदाय की प्रचारक थीं, जो भगवान बुद्ध की विचारधारा का आम समाज में प्रचार कर रही थी। इस नाते गुरु रविदास जी तथा कबीर साहेब आपस में गुरु भाई सिद्ध **रविदास जी के गुरु कौन?**

अब सवाल उठता है कि फिर रविदास जी के गुरु कौन थे? रविदास जी की वाणी के आधार पर विद्वान इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि रविदास जी भगवान बुद्ध की विचारधारा के प्रचारक थे। गुरुजी की वाणी एवं बौद्ध दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन हम अगले अध्यायों में करेंगे। भगवान बुद्ध ने कहा है 'अत्त दीपो भव' अर्थात् अपना दीपक स्वयं बनो। 'विरहत अत्त सरणा' अर्थात् अपनी ही शरण में विहार करो। 'अनञ्ज सरणा' अर्थात् किसी ईश्वरवादी की शरण में मत जाओ।

इसी आधार को श्याम सिंह जी लिखते हैं कि "रविदास जी ने स्वयं ही सिद्धी प्राप्त की थी। अतः यह शीशे की तरह साफ है, वे जो कुछ बने अपने बलबूते पर बने और उन्होंने जो कुछ कहा सिद्धों एवं नाथों से प्राप्त वाणी के बल पर कहा।"

श्याम सिंह जी के इस मत से मैं सहमत नहीं हूँ कि रविदास जी ने गुरु की आवश्यकता पर बहुत जोर दिया है। वे लिखते हैं-

'रविदास गुरु रा ग्यान बिनु, विरला कौउ वचि जाय।'

एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं-

'रविदास गुरु पतवार है, नाम नाव कवि जान।'

अप्रत्यक्ष रूप से तो रविदास जी ने किसी पूरे गुरु से दीक्षा ग्रहण करने की बात को भी स्वीकार किया है-

"सतगुरु हमहूँ लषाई बाट"

"कह रविदास मिल्यो गुरु पुरो"

"गुरु ग्यान दीपक दिया"

अतः गुरुजी की उपरोक्त पंक्तियों को पढ़ कर नहीं लगता की गुरु जी ने स्वयं ही सिद्धी प्राप्त की होगी।

हालांकि भगवान बुद्ध के उपदेश 'अत्त दीपो भव' के सुर से सुर मिलाते हुए रविदास जी एक स्थान पर लिखते हैं -

"आप आपनो कोई न जानै, कहूँ कौन सों जाई।"

फिर भी मैं अंत में इस नतीजे पर पहुंचा हूँ कि रविदास जी ने नाम रूपी दीक्षा सहजिया संतों से प्राप्त की थी। जो भगवान बुद्ध की शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार कर रहे थे। यह सहजिया संप्रदाय बिहार तथा बंगाल में 15वीं-16वीं शताब्दी तक रहा था। इस संप्रदाय के संत (सिद्ध) पूरे भारत में अपनी धर्म यात्राएं किया करते थे। संभवतः उनमें से ही किन्ही सहजिया संत के संपर्क में बनारस के आसपास आए थे और उनसे नाम की दीक्षा ली थी। इस सहजिया संप्रदाय की विचारधारा के रविदास जी का समर्पण भाव उनकी वाणी में भी देखा जा सकता है-

"कहत रैदास सहज सुन्न संत"

"बिन सहज सिद्ध न होय"

"सोई सहजि मिल्यो सोई सनमुख, कहै 'रविदास' बड़ाई।"

"सहज परम भक्ति भई"

चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु जी ने काशी के किसी वृद्ध साधु के हवाले से लिखा है कि काशी में रघुराम नाम के एक प्रतिष्ठित चर्मकार का परिवार रहता था, जिसकी पत्नी रघुरानी निःसंतान थी। एक दिन रघुराम किसी कार्य से मृगदाय ऋषिपत्तन (सारनाथ) गए। वहां एक योगी महात्मा 'रैवत प्रज्ञ' से उनका संपर्क हुआ। महात्मा ने उनसे खीराहार की इच्छा प्रकट की। दूसरे दिन रघुराम तथा रघुरानी ने उन्हें खीराहार करवाया। प्रसन्न होकर रैवत प्रज्ञ जी ने आशीर्वाद दिया। तुम्हारे घर शीघ्र ही एक ऐसा पुत्र जन्म लेगा, जिसके कारण तुम्हारा नाम अमर हो जाएगा। उस घटना के दस माह बाद रघुरानी ने एक बालक को जन्म दिया। माता-पिता ने महात्मा के नाम पर उस बालक का नाम रैदास रखा।

पाठक जानते ही है कि यह मृगदाय ऋषिपत्तन श्रमण संस्कृति का महत्वपूर्ण केंद्र था। यहीं पर भगवान बुद्ध ने प्रथम पांच भिक्षुओं को धर्मोपदेश दिया था। सातवीं-आठवीं शताब्दी में तो यहां तांत्रिक योगसाधना का गढ़ था। यह स्थल सिद्ध योगियों की तप स्थली बना।

कंवल भारती जी के अनुसार जिस संत का रघुराम जी से संपर्क हुआ था वे एक बौद्ध संत ही थे, क्योंकि ब्राह्मण संत दलितों के घर का भोजन ग्रहण नहीं कर सकते थे। रघुराम का उस संत से प्राचीन संपर्क रहा होगा और वे उनके पारंपरिक गुरु रहे होंगे। रघुराम के यहां जब संतान का जन्म हुआ तो गुरु परंपरा के कारण ही बालक का नाम रैदास (रैवत प्रज्ञ के नाम पर) रखा गया।

रैवत प्रज्ञ जी के बारे में किसी भी प्रकार की जानकारी आज उपलब्ध नहीं है। अतः तात्कालिक घोर जातिवादी परिस्थितियों में एक चमार के घर की खीर खाने की इच्छा करने वाला रैवत प्रज्ञ एक बौद्ध ही रहा होगा। ऐसा माना जा सकता है। संभव है कि रैदास जी ने शिक्षा एवं नाम दीक्षा इन्हीं रैवत प्रज्ञ जी के आश्रम में इनसे या इनके किसी शिष्य से ग्रहण की हो।

यह भी हो सकता है कि हिंदुओं की जेहादी मारकाट से बचे हुए बौद्ध भिक्षु जो दलित वर्ग में बस-खप गए थे, जिन्होंने पीढ़ी-दर-पीढ़ी बौद्ध चिंतन को जिंदा रखा हुआ था। जो समता मिशन के चिराग को भयानक मनुवादी आधियों में सुरक्षित रखे हुए थे। उन्हीं प्रच्छन्न बौद्धों के संपर्क में गुरुजी आए हों।

कुछ भी हो उनकी वाणी इस बात की गवाह है कि वे किसी बौद्ध भिक्षु द्वारा ही दीक्षित किए गए थे। इसका विस्तृत अध्ययन हम अगले अध्याय भगवान बुद्ध के वारिस में करेंगे।

साम्भार :

गुरु रविदास की हत्या के प्रमाणिक दस्तावेज
पेज संख्या 62 से 64 तक सतनाम सिंह

डा. बी. आर. अम्बेडकर द्वारा दलित वर्गों संबंधी भारतीय मताधिकार कमेटी (लोथियन कमेटी) को 1 मई 1932 को दिया गया टिप्पण

I. सामान्य

1. मैं सहमत हूँ कि दलित वर्ग शब्द को केवल अस्पृश्यों तक सीमित रखा जाए। वास्तव में मैंने स्वयं प्रयास किया है कि उन सभी को अस्पृश्यों से अलग रखा जाए, जिनमें उसी प्रकार की चेतना नहीं हो सकती, जैसी कि उन लोगों में होती है, जो अस्पृश्यता की प्रणाली में निहित सामाजिक विभेद के शिकार होते हैं। अतः इस बात की संभावना रहती है कि वे अस्पृश्यों का शोषण अपने स्वार्थों के लिए करें। मैंने कसौटी नं. 7 और 8 के उपयोग पर भी कोई आपत्ति नहीं कि है, जिनका उल्लेख अस्पृश्य वर्गों का पता लगाने के लिए कमेटी की रिपोर्ट में किया गया है। लेकिन जैसा कि मैं देखता हूँ, अलग-अलग लोग अलग-अलग तरीकों से उन्हें लागू करते हैं अथवा उनकी विभिन्न प्रकार से व्याख्या करते हैं। मैं यह जरूरी समझता हूँ कि इस मामले के बारे में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट कर दूँ।

2. पहली बात तो यह है कि कुछ क्षेत्रों में आग्रह किया गया है कि अस्पृश्य वर्गों का पता लगाने के लिए, जो भी कसौटियां लागू की जाएं, वे निश्चय ही समूचे भारत में समान रूप से लागू की जाएं। इस सिलसिले में मैं कहना चाहता हूँ कि इस प्रकार के मामले में यह उचित नहीं होगा कि समूचे भारत पर एक सी कसौटी या कसौटियों को लागू किया जाए। भारत एक अखंड समरूप देश नहीं है। वह एक महाद्वीप है। विभिन्न प्रांतों में अति विविधता वाली परिस्थितियां हैं और वे किसी जाति अथवा भाषा की डोर से गुथे हुए नहीं हैं। संचार व्यवस्था के अभाव के कारण हर प्रांत में उसकी अपनी निजी शैली के अनुसार उसके सामाजिक जीवन की विशिष्ट रीतिरिवाजों और पद्धतियों का विकास हुआ है। इन परिस्थितियों में समूचे भारत में अस्पृश्यता की अधिकांश कसौटियों को जितनी एकरूपता के साथ लागू होते हुए पाया जाता है, वह वास्तव में उल्लेखनीय है, यथा, मंदिर में प्रवेश पर रोक भारत में सर्वत्र लगी हुई है। कुएं से पानी लेने और स्पर्श से अपवित्र होने की कसौटियां भी हर प्रांत पर लागू होती हैं। भले ही सर्वत्र समान कठोरता नहीं है, लेकिन अस्पृश्यता जैसी प्रणाली तो बहरहाल सामाजिक व्यवहार का मामला है। अतः वह हर प्रांत, हर व्यक्ति की परिस्थितियों के अनुसार बदलेगा ही। ऐसी प्रणाली में पूर्ण एकरूपता का आग्रह करना केवल समस्या के साथ खिलवाड़ करना होगा। सांविधिक आयोग इस प्रकार के तर्क की संभावना के प्रति पूर्णतः सजग था। उसने सावधानी से विचार करने के बाद इसे अस्वीकार कर दिया और अस्पृश्यता की कसौटियों को लागू करने में विविधता के सिद्धान्त को मान्यता दी। खंड 2 के पृष्ठ 67 पर अपनी सिफारिशों में उसने कहा, “जब नई प्रतिनिधित्व प्रणाली के मुख्य सिद्धान्त निश्चित कर लिए जाएंगे, तो उसके बाद स्पष्ट है कि वह आवश्यक होगा कि कि (पूर्ववर्ती मताधिकार कमेटी जैसी) किसी विशेषतः नियुक्त निकाय को नए निर्वाचन नियमों को तैयार करने का काम सौंपा जाए, ताकि इन सिद्धान्तों को अमल में लाया जा सके। ऐसे निकाय का एक काम यह होगा कि वह हर प्रांत के लिए दलित वर्गों की परिभाषा तैयार करे। (जो कभी कभी तो एक ही प्रांत के भागों के बीच भी बदल सकती हैं) और ऐसी परिभाषा के अनुसार उनकी संख्या निश्चित करें। एक और बात पर मैं जोर देना चाहता हूँ और वह यह है कि समूचे भारत पर

अस्पृश्यता की एकरूप कसौटियों को लागू करने का आग्रह व्यर्थ है। यह मान लेना एक बुनियादी गलती होगी कि अस्पृश्यता की कसौटियों के विभेद अस्पृश्यों की परिस्थितियों के विभेद की ओर संकेत करते हैं। वे जिस मनोवृत्ति की ओर इंगित करते हैं, उसके सही विश्लेषण से पता चलेगा कि चाहे कसौटी स्पर्श से भ्रष्ट करने की है अथवा सांझे कुएं से पानी लेने की अस्वीकृति की है, दोनों में निहित भावना एक ही है। दोनों संकीर्णता, घृणा, द्वेष और अपमान की एकसी आन्तरिक भावना की बाह्य अभिव्यक्तियां हैं। अस्पृश्य को हिन्दू स्पर्श क्यों नहीं करेगा? किस कारण अस्पृश्य को हिन्दू मंदिर में प्रवेश करने अथवा गांव के कुएं से इस्तेमाल की अनुमति नहीं देगा? किस कारण अस्पृश्य को हिन्दू सराय में प्रवेश नहीं करने देगा? इनमें से हर प्रश्न का उत्तर एक जैसा है। वह है कि अस्पृश्य एक गन्दा व्यक्ति है और उसके साथ सामाजिक संपर्क नहीं किया जा सकता। अतः किस कारण एक ब्राह्मण किसी अस्पृश्य के धार्मिक अनुष्ठान में पुरोहित नहीं बनेगा? किस कारण एक नाई अस्पृश्य की सेवा नहीं करेगा? इन मामलों में भी उत्तर एक जैसा है वह है कि ऐसा कर्म अपमानजनक है। यदि हमारा उद्देश्य उस वर्ग के लोगों का पता लगाना है जो सामाजिक घृणा से त्रस्त हैं, तो यह बात नगण्य है कि हम कौन सी कसौटी लागू करते हैं, क्योंकि जैसा कि मैं बता चुका हूँ, इनमें से हर एक कसौटी यही बताती है कि अस्पृश्यों के प्रति स्पर्शों की सामाजिक मनोवृत्ति एक जैसी है।

3. दूसरा दृष्टिकोण यह है कि अस्पृश्य वर्गों का पता लगाने के लिए ‘स्पर्श’ द्वारा अपवित्रीकरण की कसौटी को लागू करते समय निश्चय की प्रमुखता उसकी शाब्दिक भावना को देनी होगी, न कि धारणात्मक भावना को। शाब्दिक भावना के अनुसार केवल वे व्यक्ति अस्पृश्य हैं, जिनका स्पर्श अपवित्र करता है और परिहार्य है अथवा यदि परिहार्य न हो तो स्नान करके उसे दूर किया जाता है। धारणात्मक भावना के अनुसार अस्पृश्य वह व्यक्ति है जिसे ऐसे वर्ग का समझा जाता है, जिसके बारे में सामान्य धारणा है कि वह स्पर्श से अपवित्र करता है, यद्यपि स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार ऐसे व्यक्ति के संसर्ग को टाला नहीं जा सकता अथवा धार्मिक विधि के अनुसार पवित्रीकरण की आवश्यकता नहीं होती। उन व्यक्तियों के अनुसार, जो शाब्दिक भावना के अनुसार कसौटी को लागू करना चाहते हैं, निष्कर्ष यह होगा कि तथाकथित अस्पृश्य, अस्पृश्य नहीं माने जाएंगे, जहां कि परिस्थितियां इतनी बदल गई हैं कि लोग अस्पृश्य के स्पर्श से बच नहीं सकते अथवा वे उनके स्पर्श से हुए अपवित्रीकरण से स्वयं को शुद्ध करने की परवाह नहीं करते। मैं इस दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि मेरी राय में वह गलतफहमी पर आधारित है। शब्द की शाब्दिक भावना के अनुसार किसी व्यक्ति को अस्पृश्य विभिन्न परिस्थितियों के कारण नहीं माना जा सकता। फिर भी, ऐसी बाध्यकारी परिस्थितियों की परिधि से बाहर उसे एक अशुद्ध व्यक्ति माना ही होता है, क्योंकि वह अस्पृश्य वर्ग का है। इस विभेद को बिहार तथा उड़ीसा के जनगणना अक्षीक्षक ने 1921 की अपनी जनगणना रिपोर्ट में भलीभांति प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत है उसी का निम्न उद्धरण। जातीय नियमों में ढील देने की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा है, “ऐसी घटनाएं तो हमने केवल उन उच्च तथा अधिक शिक्षित जातियों के बीच देखी हैं, जो उच्च स्थिति प्राप्त

करना चाहते हैं, लेकिन उन्हें वर्ण व्यवस्था के ढहने का लक्षण नहीं माना जाएगा, बल्कि उन्हें तो वर्तमान परिस्थितियों से उनके समंजन का लक्षण माना जाएगा। वही बात निजी संपर्क अथवा खाने-पीने की चीज को छूने संबंधी नियमों में परिवर्तन के बारे में कही जा सकती है – जमशेदपुर जैसे स्थानों के काम आधुनिक परिस्थितियों में होता है। वहां सभी जातियों के लोग मिल में साथ-साथ काम करते हैं। उन्हें अपने पड़ोसी की जाति के बारे में कोई गलतफहमी नहीं होती। लेकिन चूंकि रोजमर्रा की जिन्दगी के तथ्य इसे संभव नहीं बनाते कि एक सौ वर्ष पूर्व की भांति व्यावहारिक नियमों का पालन किया जाए, अतः यह नहीं मान लेना चाहिए कि अब शुद्ध और अशुद्ध, स्पर्श और अस्पृश्य भेदभाव नहीं बरता जाता। एक सवर्ण हिन्दू किसी अस्पृश्य को यह अनुमति नहीं देगा कि वह एक ही चारपाई आदि और उसके साथ बैठे, एक ही हुक्का गुड़गुड़ाए अथवा उसके शरीर, उसकी चारपाई, अथवा कुर्सी या उसके भोजन अथवा पानी को स्पर्श करें। यदि जीवन के तथ्यों का यह सही आकलन है, तो शाब्दिक भावना और धारणात्मक के अनुसार अस्पृश्यता का विभेद ऐसा विभेद है, जो अंतिम अवस्था के लिए कोई भेद नहीं करता। क्योंकि जैसा कि उद्धरण दर्शाता है, उन स्थानों में जहां शाब्दिक भावना के अनुसार अस्पृश्यता समाप्त हो गई, वहां धारणात्मक भावना के अनुसार वह अब भी बनी हुई है। इसी कारण मेरा आग्रह है कि अस्पृश्यता की कसौटी को निश्चय ही उसकी धारणात्मक भावना के अनुसार लागू किया जाए।

4. तीसरे इस विचार का व्यापक प्रचार-प्रसार किया जाता है कि अस्पृश्यता तेजी से समाप्त हो रही है। मैं चेतावनी देना चाहता हूँ कि इस दृष्टिकोण को स्वीकार न किया जाए और बताना चाहता हूँ कि यह आवश्यक है कि तथ्य और प्रचार में भेद किया जाए। जब यदा-कदा ब्राह्मणों और अब्राहमणों, स्पर्शों और अस्पृश्यों के आपसी मिलन की घटनाओं से निष्कर्ष निकाले जाएं, तो मेरी राय में इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि वस्तुतः हिन्दू समाज का इस्पाती ढांचा वर्ण और अस्पृश्यता की व्यवस्था पर टिका हुआ है। इस विभाजन को सहज ही केवल इस सहज तर्क के आधार पर नहीं मिटाया जा सकता कि वह किसी तर्कसंगत, आर्थिक, अथवा जातीय आधार पर नहीं टिका है। दूसरी ओर इस बात की संभावना है कि अस्पृश्यता किसी आशावादी सुधारक की आशा से भी अधिक देर तक भविष्य में बनी रहेगी। इसका कारण यह है कि उसका आधार धार्मिक रूढ़ि है। अस्पृश्यता की रूढ़ि के पीछे जो धार्मिक मान्यता है, वह उसके समाप्त करने में बाधक सिद्ध होती है। जो भी हो, सामान्य हिन्दू उसे अपने धर्म का अंग समझता है और इसमें कोई संदेश नहीं कि अस्पृश्यों के प्रति वह जो अमानवीय समझा जाने वाला व्यवहार अपनाता है, उसके पीछे सोची समझी क्रूरता की अपेक्षा धर्मपालन की भावना की प्रधानता रहती है। धर्मप्राण सामान्य हिन्दू अस्पृश्यता के नियमों में ढील केवल वही देता है, जहां वह उनका पालन नहीं कर सकता। वह कभी भी उनका परित्याग नहीं करता। उसकी दृष्टि में अस्पृश्यता का परित्याग का अर्थ है, उसके तथा हिन्दुओं द्वारा मान्य हिन्दू धर्म के मूल धार्मिक सिद्धान्तों का पूर्णतः परित्याग। अस्पृश्यता धर्म पर टिकी है। अतः वह टिकी रहेगी, जैसा कि सभी धार्मिक धारणाएं टिकी रहती हैं। भारतीय इतिहास साक्षी है कि अनेक

महात्माओं ने भारत भूमि से अस्पृश्यता को समूल नष्ट करने के प्रयास किए हैं। उनमें बुद्ध, रामानुज और वैष्णव संत जैसे महापुरुष भी शामिल हैं। यह मान लेना खतरनाक होगा कि जिस पद्धति ने ऐसे सभी प्रहारों को झेल लिया है, अतः मेरा विचार है कि जब तक यह धारणा बनी रहेगी, तब तब अस्पृश्यता भी बनी रहेगी।

अस्पृश्यता की रूढ़ि की व्याख्या और व्याप्तियों के संबंध में सामान्य प्रश्नों से संबद्ध अपने विचार मैं स्पष्ट कर चुका हूं। अब मैं उन तीन प्रान्तों में जहां मतैक्य नहीं है, दलित वर्गों की संख्या के प्रश्न पर कुछ विचार प्रकट करना चाहूंगा।

II संयुक्त प्रांत में दलित वर्ग

5. संयुक्त प्रांत में दलित वर्ग के लोगों की संख्या के बारे में कमेटी के सामने 5 अलग-अलग आकलन प्रस्तुत किए गए हैं :-

(1) संयुक्त प्रांत की प्रांतीय मताधिकार कमेटी का आकलन;

(2) अपने टिप्पण में श्री ब्लंट द्वारा दिया आकलन;

(3) जनगणना आयुक्त द्वारा दिया गया आकलन; और

(4) संयुक्त प्रांत की सरकार द्वारा दिए गए दो आकलन।

इन आकलनों के बारे में मैं यह कहना चाहता हूं:

6. मैं मानता हूं कि श्री ब्लंट के टिप्पण में काफी बल है। उसका आधार वे तथ्य हैं, जो उन्हें उस समय प्राप्त हुए जब 1911 में वह संयुक्त प्रान्त के जनगणना अधीक्षक थे। उसके साथ गैर-सरकारी हिन्दुओं की एक अनौपचारिक समिति की राय का वजन भी जुड़ा हुआ है। कहा जाता है कि उसकी नियुक्ति संयुक्त प्रांत की सरकार ने इसलिए की थी कि वह संयुक्त प्रांत में अस्पृश्य जातियों की उन सूचियों की शुद्धता की पड़ताल करें और जिन्हें ब्लंट ने अपने प्रथम प्रारूप में तैयार किया था। फिर भी निम्नलिखित तथ्यों के बारे में श्री ब्लंट से मेरा मतभेद है:

(1) एक तो यह है कि श्री ब्लंट ने निम्नलिखित तीन एकल समुदायों को दो भागों में विभक्त कर दिया है, अस्पृश्य और स्पृश्य।

	स्पृश्य	अस्पृश्य
(1) भौक्सा समूह	30,000	19,028
(2) कोरी समूह	1,54,867	7,75,839
(3) चमार समूह	2,000,000	4,187,770

(2) दूसरा मतभेद यह है कि वह 110,032 की संख्या वाले अरख समूह को स्पृश्य मानते हैं, जबकि तथ्य यह है कि वह समूह पासी समुदाय का अंग है, निश्चय ही एक अस्पृश्य समुदाय है।

मेरा विचार है कि श्री ब्लंट ने जो प्रक्रिया अपनाई है, वह तथ्यों के अनुरूप नहीं है और हिन्दुओं के सामाजिक जीवन के मूल सिद्धान्त में मेल नहीं खाती। कोरी समूह चमार समूह का ही अंग है और इसलिए पूर्णतः अस्पृश्य समूह है। उसकी पुष्टि स्वयं श्री ब्लंट के उन विचारों से होती है, जो उन्होंने 1911 की संयुक्त प्रान्त की जनगणना की अपनी रिपोर्ट में अधीक्षक की हैसियत से व्यक्त किए थे। मैं 1911 की जनगणना रिपोर्ट के पैरा 347 में व्यक्त उनके विचारों को प्रमाण मानता हूं। वहां उन्होंने कोरी का नाता चमार से होने की चर्चा की है। उसी रिपोर्ट में उन्होंने यह भी कहा है “कोरी और चमार के बीच के रिश्ते की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। गोरखपुर में ऐसा लगता है कि उनका और भी घनिष्ठ संबंध है। कहा जाता है कि वहां कोरी चमार के अलावा कोई चमार नहीं है। लेकिन कोरी चमार स्वयं को चमार नहीं कहता और स्वयं को शुद्ध और सहज कोरी के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। वह शब्द का गलत उच्चारण करता है, जो कोइरी जैसा लगता है। जब गोरखपुर जिले में एक खलासी ने शेष हिन्दू नौकरों के साथ चालाकी की और उन्हें अपने हाथ से पानी पिलाया तो उसकी बुरी तरह

टुकाई और पिटाई की गई।”

अरख समूह के बारे में स्वयं श्री ब्लंट ने अपने टिप्पणी में स्वीकार किया है कि “लगता है समग्रतः ये जातियां प्रमुख पासी जनजाति की ही प्रजातियां हैं” और उन्होंने अस्पृश्य माना है। जिन कारणों से श्री ब्लंट ने 20,000,00 चमारों के चमार समूह को अस्पृश्यों की श्रेणी से निकाल दिया है, वे उनके टिप्पण के पृष्ठ 17 पर दिए गए हैं। उन्होंने कहा है, “दूसरी ओर अनेक चमारों ने अधिक स्वच्छ धन्धे अपना लिए हैं, यथा—जिंगार, मोची और साईस के धन्धे। कानपुर और अन्यत्र चमड़े का व्यापार फलाफूला है। उसके फलस्वरूप अनेक चमार पैसे वाले हो गए हैं और उनका लक्ष्य रहता है कि अपने गांव के बन्धुओं से अधिक उच्च सामाजिक स्तर प्राप्त कर लें। ऐसे चमारों को प्रायः स्पृश्य माना जाता है। उनमें से अनेक तो अपनी जाति का नाम बदल लेते हैं, तो उतना बुरा नहीं लगता यथा कोरिल, अहरवार, जटिया, धूसिया और विशेषतः जायसवार।” मेरे विचार में ऐसे चमारों की जिन्होंने अधिक स्वच्छ धन्धे अपना लिए हैं अथवा जो पैसे वाले हो गए हैं, उन्हें श्री ब्लंट ने अस्पृश्यों की श्रेणी से निकाल कर नितान्त गलत दृष्टिकोण अपनाया है। अस्पृश्यता तथा वर्ण व्यवस्था की एक विशेषता यह है कि किसी व्यक्ति का सामाजिक स्तर उसकी जाति के स्तर के साथ बढ़ता या घटता है। हिन्दू सामाजिक जीवन का सदा ही यह नियम रहा है कि अस्पृश्य सदा सर्वदा अस्पृश्य ही रहेगा। वह उसका मूलाधार है और वही उसका विभेद उस वर्ग पद्धति से करता है, जिसमें किसी व्यक्ति का सामाजिक स्तर उसकी जाति के स्तर के साथ घटता या बढ़ता है, बल्कि उसके अपने गुण दोषों के आधार पर घटता या बढ़ता है। हिन्दू समाज के जीवन के इस मूल तथा बुनियादी सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए श्री ब्लंट के इस विभाजन को अस्वीकार करना ही होगा कि किसी अस्पृश्य मानी जाने वाली जाति के कुछ लोग स्पृश्य हो गए हैं। वस्तुतः यह एक विसंगत अभिव्यक्ति है और उसका तथ्यों से भी मेल नहीं दिख पड़ता। यह सच नहीं है कि श्री ब्लंट द्वारा निम्नलिखित चमार जाति कि वर्गों को स्पृश्य माना गया है अथवा वे मंदिर में प्रवेश कर सकते हैं और सार्वजनिक कुओं से पानी ले सकते हैं। इसके विपरीत श्री ब्लंट के कथन के अनुसार उन्होंने अपने लिए नए नाम खोज लिए हैं, ताकि उन्हें अस्पृश्य न समझा जाए। 1911 के लिए संयुक्त प्रांत की अपनी जनगणना रिपोर्ट में भी श्री ब्लंट ने स्वयं इसके उदाहरण दिए हैं। भाग एक से निम्न अंश में उद्धृत करता हूं।

“इसी प्रकार एक जायसवार चमार कभी भी यह स्वीकार नहीं करेगा कि वह चमार है, बल्कि वह अपनी जाति को केवल जायसवार के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है, जो राजपूत समेत अनेक अन्य जातियों की उपजाति है। एक बार इस साईस ने मेरे साथ ऐसी ही चालाकी करने की कोशिश की और आगरा जिले के टुंडला नगर में मैंने जायसवारों की पूरी बस्ती देखी, जहां पर जांच करने पर पता चला कि वे चमार रेजीमेंट के उन साईसों के वंशज थे, जो वहां आकर बस गये थे।”

यदि मेरे दावों को स्वीकार कर लिया जाता है और यदि अस्पृश्य जातियों की संख्या के उस भाग को, जिसे श्री ब्लंट ने स्पृश्य मान लिया, अस्पृश्यों के कुल योग में जोड़ दिया जाता है, तो संयुक्त प्रांत में अस्पृश्यों के बारे में श्री ब्लंट के आंकड़े 11,476, 214 हो जायेंगे।

7. जनगणना आयुक्त के आकलन के अनुसार दलित वर्गों के लोगों की संख्या 1 करोड़ 26 लाख है। यदि कोई और बारीक आकलन किया जाए, तो भी और केवल अस्पृश्यों वाली सूची क को स्वीकार कर लिया जाए, तो इस प्रकार आकलित दलित वर्गों के लोगों की संख्या 1 करोड़ 10 लाख से कुछ ऊपर ही बैठेगी और वह श्री ब्लंट की संख्या के काफी आसपास ही होगी।

संयुक्त प्रांत की सरकार ने दो आकलन दिए हैं। अपनी पहली रिपोर्ट में उसने संख्या 6,773,814 बताई।

अपनी अंतिम रिपोर्ट में उसने प्रांतीय कमेटी से सहमति जताई कि स्पर्श से अपवित्रीकरण की परिभाषा के अंतर्गत आने वाली जातियों के लोगों की संख्या 459,000 है। जहां तक पहली रिपोर्ट में दिए गए 6,773,814 के आकलन का संबंध है, यह बता देना जरूरी है कि यह आकलन संयुक्त प्रांत में अस्पृश्यों की संख्या का आकलन नहीं है। जहां तक इस मुद्दे का संबंध है, ऐसा लगता है कि संयुक्त प्रांत की सरकार ने 6,773,814 का जो आकलन दिया है, वह उन लोगों का है जो उनकी राय में राजनीतिक संरक्षण के लिए मान्यता चाहते हैं। इस प्रक्रिया के गुणों एवं दोषों की चर्चा मैंने आगे की है। यहां तो मैं पुनः बस इतना कहना चाहता हूं कि संयुक्त प्रान्त की सरकार का यह आकलन वस्तुतः अस्पृश्यों की कुल संख्या आकलन नहीं है। अपनी अंतिम रिपोर्ट में संयुक्त प्रांत की सरकार ने जो आकलन दिया है, उसके बारे में मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि उसके साथ-साथ उस आकलन को भी देखा जाए, जो उसने साइमन कमीशन को दिया था। उसने सांविधिक आयोग को एक ज्ञापन दिया था। उसके अंत में दलित वर्गों की स्थिति के बारे में उनका टिप्पण परिशिष्ट के रूप में छपा है। उसमें उसने कहा है: “प्रांत में हिन्दुओं की कुल आबादी में से कोई एक तिहाई को यानी कोई 1 करोड़ 30 लाख लोगों को रूढ़िवादी हिन्दू अस्पृश्य मानते हैं। इस टिप्पण के साथ संयुक्त प्रांत जनगणना संबंधी 1901 की रिपोर्ट से ली गई अस्पृश्यों के रूप में वर्गीकृत जातियों की सूची नत्थी की जाती है। उसमें हर जाति की संख्या दी गई—अस्पृश्य जातियों के साथ जुड़ी सामाजिक अपवित्रता का अर्थ केवल यह है कि सवर्ण जाति का कोई भी व्यक्ति किसी अस्पृश्य के हाथ से अन्न और जल ग्रहण नहीं करेगा। और यदि वह सवर्ण व्यक्ति को छू लेता है या उसके निकट संपर्क में आ जाता है तो इससे पहले कि सवर्ण व्यक्ति अन्न ग्रहण करे या उच्च जातियों के लोगों के साथ उठे बैठे उसे स्नानादि करना ही होगा।” इससे यह स्पष्ट हो जाता है 16 मई 1928 को जब यह ज्ञापन प्रस्तुत किया गया तो अस्पृश्यता यानी स्पर्श द्वारा अपवित्रीकरण की कसौटी पर आधारित लोगों की संख्या 1 करोड़ 30 लाख थी। यह जाहिर है कि हमारी कमेटी के अध्यक्ष ने जो परिभाषा दी है, वह संयुक्त प्रांत में प्रचलित परिभाषा से और उस परिभाषा से भिन्न नहीं हैं, जिसके आधार पर संयुक्त प्रांत की सरकार ने 1928 में एक करोड़ तीस लाख की कुल संख्या का आकलन किया था। अतः मैं इस बात को स्पष्ट करने का भार संयुक्त प्रांत की सरकार पर ही छोड़ना चाहूंगा कि दो आकलनों के बीच इतना बड़ा अंतर क्यों है? लेकिन मुझे यह कहना ही पड़ेगा कि संयुक्त प्रांत में अस्पृश्यों की आकलन के बारे में संयुक्त प्रांत की सरकार ने जो ये परिवर्तन किए हैं, वे दलित वर्गों की प्रतिनिधित्व प्रणाली के बारे में संयुक्त प्रांत सरकार के दृष्टिकोण में किए गए परिवर्तन जैसे ही हैं। 23 अगस्त 1930 को सांविधिक आयोग की रिपोर्ट पर लिखे गए अपने डिस्पैच में संयुक्त प्रांत की सरकार ने दलित वर्गों के लिए पृथक निर्वाचक-मण्डलों का प्रवर्तन समर्थन किया है। हमारी कमेटी को भेजी गई अपनी पहली रिपोर्ट में उस सरकार ने एक तालिका से मनोनयन की सिफारिश की थी जबकि अपनी अंतिम रिपोर्ट में उसने सीटों के आरक्षण की सिफारिश की है। इससे तो दलित वर्गों के ध्येय का बेड़ा ही गर्क हो जाएगा, यदि दलित वर्गों की संख्या और उनके प्रतिनिधित्व जैसे दो अति महत्वपूर्ण मसलों के बारे में किसी सरकार के विचारों में ऐसे अजीबोगरीब परिवर्तन आ जाएं।

9. अब मैं संयुक्त प्रांत की प्रांतीय मताधिकार कमेटी के आकलन की चर्चा करूंगा। उसके बारे में मैं निम्न तथ्यों की ओर ध्यान दिलाना चाहूंगा :

(एक) 1928 में जनगणना आयुक्त के, श्री ब्लंट के और सरकार के आंकड़े एक स्वर से कहते हैं कि दलित वर्ग के लोगों की संख्या यानी स्पर्श से अपवित्र करने वाले

लोगों की संख्या एक करोड़ पन्द्रह लाख और एक करोड़ तीस लाख के बीच है। अतः इस बात के औचित्य को कमेटी ही सिद्ध करेगी कि उसने इतना अजीब और कम आकलन क्यों दिया है?

(दो) मैं कमेटी के इस कथन के प्रति तनिक भी आश्चर्य नहीं हूँ कि दलित वर्गों के दो सदस्य उसके दृष्टिकोण से सहमत हैं और कमेटी के अधिकांश सदस्यों का दृष्टिकोण समझौते से सभी अर्थों के बारे में यथोक्त है। जो भी हो, मैं यह कहना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि इस मसले के बारे में बाबू रामचरन की राय का कोई महत्व नहीं है। उनका नाता दलित वर्ग से केवल इस अर्थ में है कि वह आर्थिक दृष्टि से निर्धन और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के हैं और शब्द की यथार्थ भावना के अनुसार वह अस्पृश्य वर्ग के नहीं हैं।

(तीन) भारतीय मताधिकार कमेटी ने अस्पृश्यों के वर्गीकरण के लिए मंदिर प्रवेश और स्पर्श द्वारा अपवित्रीकरण की दो कसौटियां अपनाई हैं। संयुक्त प्रांत की प्रांतीय मताधिकार कमेटी ने केवल एक कसौटी को अर्थात् स्पर्श द्वारा अपवित्रीकरण की कसौटी को आधार माना है और वह भी उसकी शाब्दिक भावना के अनुसार, न कि उसकी धारणात्मक भावना के अनुसार।

(चार) हमारे अध्यक्ष की स्पृश्यता संबंधी परिभाषा को अपनाते समय, जिसके बारे में मुझे कहना ही पड़ेगा कि उन्होंने वह अपनी जिम्मेदारी पर ही दी। लगता है कि प्रांतीय मताधिकार कमेटी ने खंड का उस रूप में उल्लेख नहीं किया है 'जिस रूप में वह संयुक्त प्रांत में विद्यमान है।'

10 श्री ब्लंट तथा संयुक्त प्रांत की सरकार दोनों ने दलित वर्गों की संख्या के आकलन की जो पद्धति अपनाई है, उसके बारे में एक और महत्वपूर्ण प्रश्न पैदा होता है। भारतीय मताधिकार कमेटी ने इस परिकल्पना को अपना आधार बनाया है कि वे लोग जो उसके द्वारा स्वीकृत दो कसौटियों की परिधि में आते हैं, उन्हें अस्पृश्य माना ही जाएगा और विशेष प्रतिनिधित्व के लिए भी उनकी गणना उसी प्रकार की जाएगी, अपनी पड़ताल के दौरान भारतीय मताधिकार कमेटी ने देखा कि जैसी परिस्थिति भारत की है, उसमें सभी दलित वर्ग अस्पृश्य नहीं हैं और उनकी आर्थिक और शैक्षिक दशा के बावजूद सभी अस्पृश्यों को उनमें शामिल किया जाए। लगता है कि श्री ब्लंट और संयुक्त प्रांत की सरकार ने एक नितान्त अलग प्रकार का विभेद 'अस्पृश्यों' और 'दलित वर्गों' के बीच किया है। उसके अनुसार सभी दलित वर्गों के लोग अस्पृश्य हैं, लेकिन सभी अस्पृश्य दलित वर्गों की श्रेणी में नहीं आते। यह प्रचलित परिपाटी और भारतीय मताधिकार कमेटी के निष्कर्षों के नितान्त प्रतिकूल हैं। सवाल केवल नामकरण का नहीं है। इसके अति दूरगामी परिणाम निकलेंगे और वे प्रतिनिधित्व की मात्रा पर प्रभाव डालेंगे। संयुक्त प्रांत की सरकार और श्री ब्लंट प्रतिनिधित्व के प्रयोजन के लिए सभी अस्पृश्यों को आकलन में शामिल नहीं करते। वे केवल उन अस्पृश्यों का आकलन करते हैं, जिन्हें दलित कहा जा सकता है। भारतीय मताधिकार कमेटी ने इस परिकल्पना को आधार माना है कि इस प्रयोजन के लिए उसके द्वारा स्वीकृत दो कसौटियों को लागू करके जब एक बार अस्पृश्यों के वर्ग का निर्धारण कर लिया जाए, तो इस प्रकार निर्धारित अस्पृश्यों के समूचे वर्ग को प्रतिनिधित्व के लिए आकलन में शामिल किया ही जाना चाहिए और उसके लिए अमीर और गरीब, उन्नत अथवा पिछड़े, शिक्षित अथवा अशिक्षित का और कोई भेदभाव न किया जाए। मेरी राय में यही प्रक्रिया सही प्रक्रिया है। यह कहना आवश्यक नहीं है कि मैं श्री ब्लंट और संयुक्त प्रांत की सरकार द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया से सहमत नहीं हूँ।

III पंजाब के दलित वर्ग

11. 1931 की जनगणना में दलित वर्गों की संख्या के जो आंकड़े दिए गए हैं, उनके बारे में दो तथ्यों की ओर मैं ध्यान दिलाना चाहता हूँ:

(एक) 1911 की जनगणना के अनुसार स्पर्श द्वारा अपवित्र करने वाले लोगों की संख्या 2 करोड़ 80 लाख थी, जबकि 1931 की जनगणना में अस्पृश्यों की संख्या 1 करोड़ 30 लाख दी गई है।

(दो) 1911 की जनगणना में उन 23 जातियों की सूची दी गई है, जिन्हें स्पर्श द्वारा अपवित्र करने वाला माना जाता है। 1931 की जनगणना में केवल पंजाब में अस्पृश्य लोगों वाली जातियों का उल्लेख किया गया है।

12. मैं यह नहीं समझ सका हूँ कि क्या कारण है कि अस्पृश्यों की कुल संख्या और उस श्रेणी में शामिल जातियों की सूची 1911 और 1931 के बीच इतनी ज्यादा क्यों सिकुड़ गई है। लेकिन यह बताना जरूरी है कि पिछले कुछ वर्षों से पंजाब के अस्पृश्यों के बीच आद धर्म आन्दोलन नामक एक सशक्त आंदोलन चल रहा है। उसका उद्देश्य यह है कि वे हिन्दू परिधि से अलग होकर आद धर्मियों के नए नाम से एक अलग जाति के रूप में अपना संगठन बना लें। इस आंदोलन ने इतना जोर पकड़ लिया है कि अस्पृश्यों ने निर्णय किया कि उन्हें 1931 की जनगणना में हिन्दुओं के स्थान पर आद-धर्मी के रूप में दर्ज किया जाए। सरकार ने इस भावना को मान्यता दी और पंजाब के जनगणना अधीक्षक को अनुमति दी कि वह आद-धर्मियों की नयी श्रेणी का अलग कालम बना दें। इसके कारण पंजाब के कुछ भागों में हिन्दुओं और अस्पृश्यों के बच दंगे हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ भागों में अस्पृश्यों ने स्वयं को केवल आद-धर्मी के रूप में दर्ज कराया और अपनी-अपनी जातियों का कोई उल्लेख नहीं किया और कुछ अन्य भागों में जहां उन्हें ऐसा नहीं करने दिया गया, उन्होंने स्वयं को अपने जातीय नामों के अधीन 'हिन्दू' के रूप में दर्ज कराया। इन तथ्यों का उल्लेख मैं यह दर्शाने के लिए कर रहा हूँ कि अस्पृश्यों की गणना के काम में मुश्किलें पैदा हुईं और इस बात को पंजाब की सरकार ने भी स्वीकार किया है। हो सकता है कि इनके कारण पंजाब में अस्पृश्यों की संख्या और सूची में यह कमी आयी हो। अतः मामले पर सावधानी से विचार करने की जरूरत है।

IV. बंगाल के दलित वर्ग

13. बंगाल के दलित वर्गों के बारे में एक महत्वपूर्ण साक्ष्य है और मैं उसकी ओर ध्यान दिलाना चाहूंगा। उससे पता चलता है कि 1911 की बंगाल की जनगणना में जो सूची दी गई है, वह उन जातियों का सही आकलन है, जिन्हें बंगाल में परंपरा से अस्पृश्य जातियां माना जाता रहा है। मैं 1809 के विनियम 4 की धारा 7 का उल्लेख करता हूँ। (यह विनियम 1806 के विनियम 4 और 5 को रद्द करने के लिए था और उसका उद्देश्य था कि उक्त विनियमों के नियमों के स्थान पर नये नियम रखे जाएं। उक्त विनियमों का संबंध जगन्नाथ की यात्रा करने वाले यात्रियों पर शुल्क लगाने और मंदिर के कामकाज के अधीक्षण और प्रबंध से था। इसे गवर्नर जनरल-इन-काउंसिल ने 28 अप्रैल 1809 को पारित किया था।) उक्त धारा में उन जातियों की सूची दी गई है, जो पुरी के जगन्नाथ मंदिर में प्रवेश नहीं कर सकती थी: (1) लोली अथवा काशी, (2) कलाल अथवा सुनरी, (3) मछुवा (4) नाम शूद्र अथवा चांडाल, (5) घुस्की, (6) गजूर, (7) बागड़ी, (8) जोगी अथवा नूरबाफ, (9) कहार-बौरी और दुलिया, (10) राजवंसी, (11) पिराली, (12) चमार, (13) डोम, (14) पान, (15) तिपारू, (16) भुईन्नली, (17) हरि।

यह आकलन 1911 की जनगणना की सूची से मेल खाता है। अतः वह उसकी शुद्धता को समर्थन प्रदान करता है। प्रसंगतः इससे पता चलता है कि 100 वर्ष की अवधि में भी बंगाल के अस्पृश्यों के सामाजिक दर्जे में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

13. संयुक्त प्रांत, बंगाल और पंजाब में दलित वर्गों की संख्या के बारे में सहमति नहीं है। इन तीन प्रांतों के संबंध में मैं इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ कि जहां भारतीय मताधिकार कमेटी ने अस्पृश्यों की संख्या के निर्धारण के लिए दो अलग कसौटियों को आधार माना है, वहां जाहिर है कि प्रांतीय सरकारों और प्रांतीय कमेटियों ने एक ही कसौटी यानी स्पर्श द्वारा अपवित्रीकरण की कसौटी का अनुसरण किया है।

V. नामकरण

14. संविधान में प्रस्तावित परिवर्तनों के फलस्वरूप मतदाता सूचियों में जो संशोधन हो रहा है, वह इस प्रश्न पर विचार के लिए अति उत्तम अवसर है कि दलित वर्गों का एक उचित और उपयुक्त नामकरण किया जाए। अतः मैं इस प्रश्न पर अपनी राय व्यक्त करना चाहता हूँ। जिन जातियों को इस समय 'दलित वर्ग' कहा जाता है, उन्हें इस शब्द के प्रयोग पर काफी आपत्ति है। कमेटी के सामने जो अनेक साक्षी उपस्थित हुए हैं, उन्होंने इस भावना को व्यक्त किया है। इसके अलावा दलित वर्ग शब्द ने जनगणना में काफी संभ्रम पैदा करा दिया है, क्योंकि इसमें उन दूसरे लोगों का भी समावेश है, जो वास्तव में अस्पृश्य नहीं हैं। दूसरे वह यह धारणा पैदा करता है कि दलित वर्ग एक निम्न और असहाय समुदाय है, जब कि वास्तविकता यह है कि हर प्रांत में उनमें से अनेक सुसम्पन्न और सुशिक्षित लोग हैं और समूचे समुदाय में अपनी आवश्यकताओं के प्रति चेतना जागृत हो रही है। उसके मानस में भारतीय समाज में सम्मानजनक दर्जा प्राप्त करने की प्रबल लालसा पैदा हो गई है और वह उसे प्राप्त करने के लिए भागीरथ प्रयास कर रहा है। इन सब कारणों के आधार पर 'दलित वर्ग' शब्द अनुपयुक्त और अनुचित है। असम के जनगणना अधीक्षक श्री मुल्लान ने अस्पृश्यों के लिए 'बाह्य जातियां' नामक नये शब्द का प्रयोग किया है। इस बोध नाम के अनेक लाभ हैं। यह उन अस्पृश्यों की स्थिति की सही व्याख्या करता है, जो हिन्दू धर्म के भीतर तो हैं लेकिन हिन्दू समाज से बाहर हैं और वह उसका विभेद उन हिन्दुओं से करता है, जो आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से दलित तो हैं — लेकिन हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज दोनों की परिधि के भीतर हैं। इस शब्द के दो अन्य लाभ हैं दलित वर्ग जैसे अनिश्चित शब्द के प्रयोग से इस समय, जो समूचा भ्रम जाल फैला हुआ है वह तो 'बाह्य जाति' के प्रयोग से दूर होता ही है पर साथ ही साथ वह भोंडा भी नहीं है। हमारी कमेटी का विचार है कि वह इस संबंध में सिफारिश करने का अधिकार नहीं रखती, लेकिन दलित वर्गों के प्रतिनिधि के नाते मैं बिना किसी संकोच के कह सकता हूँ कि जब तक कोई और बेहतर नाम न मिल जाए, तब तक अस्पृश्य वर्गों को अधिक व्यापक शब्द 'बाह्य जातियों' या 'बहिष्कृत जातियों' के नाम से पुकारा जाए, न कि दलित वर्गों के नाम से।

VI. आरक्षण

15. इस टिप्पण को समाप्त करने से पूर्व मैं अपनी ओर से उसी आरक्षण की मांग करना चाहूंगा, जिसकी मांग कमेटी के मेरे मुस्लिम साथियों ने की है अर्थात् गोलमेल सम्मेलन में प्रस्तुत अल्पसंख्यकों संबंधी समझौते में दलित वर्गों ने सीटों के जिस अनुपात की मांग की है, उस पर श्रमिक महिलाओं तथा अन्य विशेष हितों के लिए सीटों के आवंटन का कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा।

साम्भार :

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड-4, पेज संख्या 218 से 229 तक डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

निरीक्षण तथा संतुलन के उपायों की आवश्यकता

अंग्रेजों ने भारत पर 150 वर्षों से अधिक तक राज किया, पर उन्होंने कभी यह नहीं सोचा कि भाषावार राज्य बनाए जाएं, जबकि उस समय भी यह समस्या थी। बहुभाषी क्षेत्रों की सांस्कृतिक लालसा जानकर उस पर अमल करने की अपेक्षा उनकी रुचि केवल इस बात में थी कि प्रशासन स्थायी हो और पूरे देश में कानून और व्यवस्था बनी रहे। यह सही है कि उनके राज के अंतिम दिनों में उन्होंने भी यह महसूस किया कि उन्होंने जो प्रशासनिक व्यवस्था कायम की है, उसमें भाषाओं के लिहाज से भी कुछ न कुछ ताल-मेल होना आवश्यक है, कम से कम उन क्षेत्रों में तो किया जाना ही चाहिए, जहां भाषाओं की भिन्नता होने से उनमें परस्पर कशमकश दिखाई पड़ती है। इसलिए शायद भारत छोड़कर जाने से पहले उन्होंने बंगाल, बिहार और उड़ीसा जैसे भाषा पर आधारित राज्य बना दिए। मान लो, यदि वे हमें छोड़कर न जाते और हम पर राज करते ही रहते तो वे अन्य क्षेत्रों को भी तार्किक दृष्टि से भाषावार राज्यों के रूप में पुनर्गठित करते।

अंग्रेजों ने भाषावार प्रांतों के निर्माण की बात सोची, इसके बहुत पहले ही श्री गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने सन् 1920 में अपना जो संविधान बनाया, वह भाषावार प्रांतों पर आधारित था। इस प्रकार का संविधान बनाने के पीछे जो विचारधारा रही, वह उनकी स्थायी विचारधारा थी या लोगों को कांग्रेस की ओर आकृष्ट करने के लिए सोचा गया तात्कालिक प्रलोभन मात्र था, इसके बारे में अब अटकलें लगाना उचित नहीं होगा। पर हां, इस बात में तो संदेह नहीं है कि देर से ही सही पर अंग्रेजों को यह समझ में आ गया था कि भाषायी आधार को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए और इसलिए उन्होंने इसे सीमित मात्रा में सही, पर कार्यरूप में परिणत तो किया ही।

विरोध

सन् 1945 तक तो कांग्रेस ने उस समस्या की ओर ध्यान नहीं दिया, जो 1920 में बने संविधान के अनुसार उसने स्वयं पैदा की थी। सन् 1945 में जब कांग्रेस के हाथ में शासन की बागडोर आई, तब इस जिम्मेदारी को निभाने का बोझ उस पर आ पड़ा। भाषावार प्रांतों के गठन के हाल ही के इतिहास पर नजर डालने से यह पता चलता है कि उस मामले की भाषावार के निर्माण का प्रस्ताव रखकर एक संसद-सदस्य ने पहल की। सरकार की ओर से बहस का उत्तर देने की जिम्मेदारी मेरी थी। वरिष्ठ सत्ताधारियों की राय जानने के लिए मैंने उनसे विचार-विमर्श किया। यह बात विचित्र लग सकती है, किंतु मुझे साफ पता चल गया कि हाइकमान भाषावार प्रांतों के निर्माण के कतई खिलाफ है। इन परिस्थितियों में यही ठीक समझा गया कि बहस का उत्तर यदि प्रधानमंत्री स्वयं दे तो ठीक रहेगा। बहस का उत्तर देते हुए प्रधानमंत्री ने सदन को यह आश्वासन दिया कि जल्दी ही आंध्र राज्य का गठन किया जाएगा। प्रधानमंत्री के इस आश्वासन के फलस्वरूप प्रस्ताव वापस ले लिया गया। फिर मामला वहीं शांत हो गया।

दूसरी बार

संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष के नाते मुझे दूसरी बार इस समस्या का सामना करना पड़ा। जब संविधान का प्रारूप तैयार हो चुका तो मैंने प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर पूछा कि प्रस्ताव पर हुई बहस के उत्तर में उन्होंने सदन को जो आश्वासन दिया था, उसको ध्यान में रखते हुए क्या मैं संविधान में “क” वर्ग के राज्यों में आंध्र की एक अलग राज्य के रूप में सम्मिलित कर दूं। उनका क्या उत्तर आया था, इसके बारे में और क्या हुआ, इसकी न तो मुझे याद है और न ही मेरे पास इस समय उसका कोई प्रमाण उपलब्ध है। किन्तु मैं इतना अवश्य जानता हूं कि तब संविधान सभा के सभापति डा. राजेन्द्र प्रसाद ने यू. पी. के एक वकील श्री धर की अध्यक्षता में भाषावार प्रांतों के गठन पर विचार करने के लिए एक समिति बना दी।

यह धर समिति किसी और बात के लिए नहीं तो कम से कम एक बात के लिए तो अवश्य ही याद की जाती रहेगी। समिति ने यह कहा था कि भाषा के आधार पर चाहे महाराष्ट्र को एक अलग राज्य का दर्जा दिया जाए, किंतु बंबई को किसी भी हालत में महाराष्ट्र में सम्मिलित नहीं किया जाए। कांग्रेस के जयपुर अधिवेशन में उस रिपोर्ट (प्रतिवेदन) पर विचार हुआ। जयपुर कांग्रेस ने तीन सदस्यों की एक समिति बनाई, जिसमें प्रधानमंत्री, श्री वल्लभभाई पटेल और डा. पट्टाभि सीतारमैया थे। उन्होंने जो रिपोर्ट दी, उसका सार यह है कि आंध्र प्रांत का अविलंब गठन किया जाए, किंतु मद्रास शहर तमिलों के पास ही रहे। ब्यौरेवार बातें तय करने के लिए एक अन्य समिति बनाई गई, उसने भी कमोबेश सर्वसम्मति से रिपोर्ट दी। श्री प्रकाशम् सहित आंध्र के अनेक

सदस्यों ने इस रिपोर्ट का विरोध किया। वे लोग किसी भी हालत में मद्रास पर अपने दावे को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। इस तरह इस मामले पर निर्णय नहीं किया जा सका।

इसके बाद श्री पोट्टी श्रीरामुलु वाली दुर्घटना हुई। श्रीरामुलु ने आंध्र प्रांत के लिए आत्मोत्सर्ग किया। शासक दल के कामकाज पर यह शर्मनाक टिप्पणी ही मानी जाएगी कि एक ऐसे काम के लिए श्रीरामुलु को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा, जिसकी वैधता को कांग्रेस मान चुकी थी। अब जिस नए आंध्र प्रांत के निर्माण की बात मानी जा चुकी थी, उसे स्वर्गवासी श्रीरामुलु की आत्मा के लिए प्रधानमंत्री द्वारा किया गया पिंडदान ही मानना होगा। क्या किसी अन्य देश में सरकार के इस तरह के काम को सहन किया जा सकता था? अब इसके बारे में बहस से क्या फायदा?

मेरी राय में किसी भी भाषावार राज्य के अस्तित्व में आने से पहले तीन शर्तें पूरी होनी चाहिए। पहली शर्त यह है कि वह राज्य आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर हो। संविधान बनाते समय देसी रियासतों के विलय के प्रश्न पर जब विचार किया गया तो इस नियम को नितांत अनिवार्य माना गया था। केवल उन्हीं देसी रियासतों को स्वतंत्र राज्यों का दर्जा दिया गया, जो आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर थी। शेष सभी को पड़ोसी राज्यों में मिला दिया गया।

सहारा जैसी स्थिति

क्या प्रस्तावित आंध्र राज्य आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर है? न्यायमूर्ति श्री वांचु ने स्पष्ट रूप से यह माना था कि आंध्र राज्य का वार्षिक राजस्व-घाटा पांच करोड़ रु. होगा। क्या इस घाटे को कम करने के लिए आंध्र राज्य या तो नए कर लगाएगा या अपना खर्च कम करेगा? आंध्रवासियों पर ही इसका असर होगा। क्या इस घाटे की पूर्ति की जिम्मेदारी केन्द्र अपने ऊपर लेगा? यदि हां, तो क्या यह जिम्मेदारी केवल प्रस्तावित आंध्र राज्य तक ही सीमित रहेगी या केन्द्र ऐसे ही अन्य मामलों में भी जिम्मेदारी उठाएगा? इन प्रश्नों का जवाब मिलना चाहिए?

नए आंध्र राज्य की राजधानी नियत नहीं की गई है। प्रसंगवश मैं कहना चाहूंगा कि मैंने यह कभी नहीं सुना कि कोई नया राज्य बना हो और यह तय नहीं हुआ हो कि उसकी राजधानी क्या होगी। श्री राजगोपालाचारी जो पक्के तमिल हैं, आंध्र राज्य की सरकार के प्रति इतना शिष्टाचार भी बरतेंगे कि उसे एक रात के लिए ही सही मद्रास शहर में टिकने दें, जैसा कि हिन्दू धर्म सभी हिन्दुओं को अपने अतिथियों के प्रति अपनाने की शिक्षा देता है। नई सरकार को अपना आवास स्वयं ढूंढना होगा और सरकार चलाने के लिए अपने घर बनाने होंगे। इसके लिए वह कौन-सी जगह चुनेगी? खोखे खड़े करने के लिए पैसा कहां से आएगा? आंध्र तो सहारा के रेगिस्तान जैसा है, जहां कोई नखलिस्तान भी नहीं है। यदि उसकी सरकार इस सहारा में तत्कालिक शरण लेती है, तब भी आगे चलकर उसे किसी अधिक स्वास्थ्यप्रद स्थान में अपना लवाजमा ले जाना ही होगा। इस तरह इस अस्थायी मुख्यालय पर अनावश्यक खर्च करना होगा। क्या सरकार ने समस्या के इस पहलू पर भी विचार किया है? अभी से क्यों न उन्हें ऐसा स्थान आवंटित कर दिया जाए, जहां स्थायी तौर पर राजधानी रखने की संभावनाएं अधिक नजर आती हों।

मेरी दृष्टि में राजधानी के लिए वारंगल सर्वाधिक उचित स्थान है। वह आंध्र की पुरानी राजधानी रहा है। यहां रेलवे जंक्शन है। यहां पर्याप्त संख्या में भवन भी उपलब्ध हैं। यह सही है कि यह शहर आंध्र के उस इलाके में स्थित है, जो हैदराबाद रियासत का हिस्सा है। सैद्धांतिक दृष्टि से तो यह होना चाहिए था कि विशालकाय और अष्टावक्र जैसे आकार वाली हैदराबाद रियासत का विभाजन किया जाता और अलग से एक पूर्ण आंध्र राज्य बनाया जाता। किंतु यदि प्रधानमंत्री को इस प्रस्ताव पर अपनी अंतरात्मा की प्रेरणा से कोई आपत्ति है। तो क्या वे हैदराबाद रियासत के आंध्र वाले (तेलुगु-भाषी) हिस्से में एक अंतःक्षेत्र (एन्क्लेव) बनाकर उसे नए आंध्र राज्य में नहीं मिला सकते? इस तरह वारंगल का मामला सुलझ सकता है। अंतःक्षेत्र बनाना भारत में कोई नई घटना नहीं होगी। किंतु प्रधानमंत्री तो हैदराबाद में, और कश्मीर में भी विधि के विधान के विपरीत काम करने को कटिबद्ध हैं। मुझे विश्वास है कि उन्हें शीघ्र ही इसके परिणामों से सीख मिल जाएगी।

पहली शर्त

यह केवल संयोग है। मुख्य बात तो यह है कि भाषा पर आधारित राज्य को आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर होना चाहिए। भाषावार राज्य के गठन का यह पहला विचारणीय बिंदु है। दूसरा बिंदु यह होगा कि हम इस बात का

पूर्वानुमान लगा सकें कि भाषावार प्रांत में क्या होने वाला है। दुर्भाग्यवश किसी ने भारत की जनसंख्या के स्वरूप का सर्वेक्षण करने की ओर ध्यान नहीं दिया है। जनगणना की रिपोर्टों से हमें केवल इतना पता चलता है कि हिन्दू कितने हैं, मुसलमान कितने हैं, यहूदियों और ईसाइयों की संख्या कितनी है, यह फिर हम यह जान सकते हैं कि अछूतों की संख्या अमुक-अमुक है। ये रिपोर्टें केवल हमारी इतनी जानकारी बढ़ाती हैं कि भारत में ये-ये धर्म प्रचलित हैं। धर्मों की संख्या जान लेने के अतिरिक्त इस प्रकार की सूचना का और कोई महत्व नहीं है। हम तो यह जानना चाहते हैं कि ये रिपोर्टें हमें यह बताएं कि भिन्न-भिन्न भाषा क्षेत्रों में जातियों का विभाजन कैसा है, किंतु इनमें इस प्रकार की सूचना उपलब्ध नहीं होती। हमें अपने ज्ञान और जानकारी पर ही भरोसा करना पड़ता है। यदि यह कहूं कि किसी भाषा क्षेत्र में जातियों का विभाजन प्रायः इस तरह का होता है, अर्थात् उसमें एक या दो बहुसंख्यक घनी जातियां होती हैं और कुछ थोड़ी जातियां होती हैं, जो घनी जातियों के काबू में रहते हुए आश्रित जीवन व्यतीत करती हैं।

सामुदायिक या जातिगत बनावट

मैं कुछ उदाहरण प्रस्तुत करूं। पंजाब की बनावट देखें। पूरे इलाके में जाटों का प्रभुत्व है। अछूत वर्ग के लोग उनके अधीन और उन पर आश्रित हैं। आंध्र का उदाहरण ले : पूरे भाषा क्षेत्र में दो या तीन बड़े समुदाय छापे हुए हैं। वे या तो रेडडी हैं, या कम्मा और कापू। वे सारी जमीन के मालिक हैं, सारे सरकारी पदों पर वे ही वे दिखाई देते हैं, या फिर सारा व्यवसाय उनके हाथों में है। अछूत उन्हीं के सहारे अपनी गुजर-बसर करते हैं। महाराष्ट्र की स्थिति देखें : पूरे महाराष्ट्र के हर गांव में आपको मराठे भरपूर संख्या में मिलेंगे। वहां ब्राह्मणों, गूजरों, कोलियों और अछूतों की स्थिति दयनीय है। कभी समय था, जब ब्राह्मण और बनिए, निर्भीक जीवन यापन करते थे। किंतु अब समय बदल गया है। श्री गांधी की हत्या के बाद ब्राह्मण और बनिए मराठों से छिपे-छिपे रहते हैं और वे भागकर कस्बों और शहरों में बस गए हैं, क्योंकि वहां वे अपने आपको अधिक सुरक्षित महसूस करते हैं। केवल अभागे अछूत, कोली और माली ही बहुमत वाले मराठा समुदाय के अत्याचारों को सहन करने के लिए गांवों में बच रहे हैं। इस जातिगत बनावट को उन देखा करेगा, वह स्वयं अपने जीवन को खतरे में डालने का जिम्मेदार होगा।

भाषावार प्रांतों में छोटे-छोटे समुदायों, अर्थात् अल्पसंख्यक जातियों का क्या भविष्य है। क्या वे विधायिका में चुने जाने की आशा रखें? क्या उन्हें राज्य-सेवा में कोई पद मिलने की आशा है? उनकी आर्थिक उन्नति के लिए क्या कोई ध्यान देने वाला है? इन परिस्थितियों में भाषायी प्रांत के गठन का अर्थ होगा—स्वराज को किसी एक बहुसंख्यक समुदाय के हाथों में सौंप देना। श्री गांधी के स्वराज की क्या दुर्दशा है। जो लोग समस्या के इस पहलू को नहीं समझते या समझना नहीं चाहते, वे इसे तभी भली-भांति समझेंगे, जब हम भाषायी राज्य जैसे शब्द का प्रयोग न कर जाट राज्य, रेड्डी राज्य या मराठा राज्य कहेंगे।

तीसरा मसला

विचारणीय तीसरा मुद्दा यह है कि क्या भाषावार राज्यों के निर्माण का यह अर्थ लिया जाए कि एक भाषा बोलने वाले सभी लोगों को एक राज्य में इकट्ठा कर दिया जाएगा। क्या महाराष्ट्र राज्य में सभी मराठी-भाषियों को एकत्रित किया जाना है। क्या सभी (तेलुगु-भाषी) आंध्र क्षेत्रों को आंध्र राज्य में मिला दिया जाएगा? एकत्रीकरण का यह प्रश्न केवल नई इकाइयों से ही संबंधित नहीं है। इसका संबंध यू. पी., बिहार और पश्चिमी बंगाल जैसे भाषा पर आधारित वर्तमान प्रांतों से भी है। जैसा कि यू. पी. के प्रसंग में हुआ है, सभी हिन्दी-भाषी लोगों को एक राज्य में समेकित करना क्यों आवश्यक है? जो ऐसे समेकन या एकत्रीकरण की मांग करते हैं, उनसे पूछा जाना चाहिए कि क्या वे अन्य राज्यों के साथ युद्ध करने जा रहे हैं। यदि समेकन से पृथक्ता का भाव पुष्ट होता हो तो आगे चलकर हमारा भारत ठीक उसी स्थिति में पहुंच जाएगा, जैसी स्थिति इस देश की मौर्य साम्राज्य के पतन या बिखराव के बाद हुई थी। क्या भाग्य हमें उसी ओर धकेल रहा है।

इसका यह अर्थ नहीं कि भाषावार प्रांतों के गठन का कोई औचित्य दिखाई नहीं देता। इसका तो अर्थ केवल इतना है कि भाषावार प्रांत का मुखौटा पहन कर कोई बहुसंख्यक समुदाय शक्ति का दुरुपयोग न करने पाए, अर्थात् भाषावार प्रांतों के निर्माण के साथ ही उन पर

सामार :

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खंड—1, पेज संख्या 163 से 167 तक डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

विश्व के प्रथम सामाजिक क्रान्तिकारी

मानव ने अपने लाखों वर्षों के इतिहास के दौरान अनगिनत उतार-चढ़ाव देखे हैं। इनमें कुछ विशेष घटनाएं इतिहास पर अपना प्रभाव छोड़ गयी हैं और कुछ पानी के बुलबुले के समान बिना कुछ किए-किराए मिल गयीं। कुछ धर्म अपने आप में मानवतावादी रहे हैं— किसी न किसी रूप में, कुछ न कुछ दूर तक जीवन नैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक पहलुओं को प्रभावित किए हैं। सैकड़ों वर्ष पूर्व, आज की तरह, इनकी सीमाएं ठीक तरह बँटी हुई नहीं थी।

सिद्धार्थ गौतम का जन्म 563 (ई.पू.) में हुआ था। उस समय भारत अनेक छोटे-बड़े राज्यों में बँटा हुआ था। जहाँ तक मालूम है देश में उस समय 16 जनपद और लगभग 9 गणराज्य थे। जनपद किसी राजा के शासनाधीन थे। कुछ गणराज्यों में कुलीन परिवारों का शासन था। जनपदों में कौशल और मगध बहुत शक्तिशाली थे। कौशल नरेश प्रसेनजित और मगध नरेश बिम्बिसार बुद्ध के समकालीन थे। कपिलवस्तु में कुछ शाक्य परिवार बारी-बारी से राज्य करते थे। सिद्धार्थ के जन्म के समय उनके पिता शुद्धोधन की राजा बनने की बारी थी। अतः वे राजा हुए और सिद्धार्थ की माता का नाम महामाया था। उनके जन्म के सातवें दिन महामाया की मृत्यु हो गयी। उसके बाद उनकी बड़ी माँ तथा मौसी, प्रजापति ने उनका पालन पोषण किया।

सिद्धार्थ की प्रव्रज्या के समय देश में बहुत मानसिक हलचल थी। ब्राह्मणी-दर्शन के अलावा बासठ और दार्शनिक मत थे, जिनमें अक्रियावाद, नियतिवाद, उच्छेदवाद, अन्योन्यवाद, विक्षेपवाद तथा चातुर्यामसंवर-वाद प्रमुख थे। ये सभी ब्राह्मणी दर्शन के विरोधी थे। अक्रियावाद के मुखिया पूर्णकाश्यप की मान्यता थी कि कार्यों का आत्मा पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। नियतिवाद के संस्थापक मक्खली गोसाल का कहना था कि चाहे कोई कुछ भी करे जो होना है होकर रहेगा। उच्छेदवाद के अगुवा अजित केस-कम्बल का उपदेश था कि मनुष्य को जो कुछ भोगना है वह भोग कर ही रहेगा। यज्ञ और होम सब व्यर्थ है। अन्योन्यवाद के मुखिया पकुध कच्चायन की शिक्षा थी कि प्राणियों के शरीर का निर्माण सात स्वतंत्र और कभी नष्ट न होने वाले तत्वों से बना है। जबकि विक्षेपवाद के प्रमुख संजय वेलटिपुत्र का मत परले दर्जे का सन्देहवाद था। वहीं बुद्ध के समकालीन महावीर के चातुर्यामसंवर-वाद की स्थापना थी कि मनुष्य का पुनर्जन्म उसके अतीत और वर्तमान के कार्यों पर ही निर्भर करता है। सिद्धार्थ ने ब्राह्मणी दर्शन तथा उपरोक्त सभी दर्शनों को नकार दिया और नए प्रकाश की खोज में जुट गए।

जब वे राजगृह में थे तभी उन्हें पता चला कि कोलियों और शाक्यों के बीच युद्ध, जिसके कारण उन्होंने गृह-त्याग किया था, संभवतः टल गया है। तब तक उनकी समस्या ने व्यापक रूप धारण कर लिया था। स्थायी सामाजिक वर्ग-संघर्ष क्षत्रियों में, गृहस्थों में, माता और पुत्र में, पिता और पुत्र में, बहन और भाई में तथा साथी और साथी में समस्या के समाधान के लिए इस संघर्ष के कारण और निवारण ढूँढ़ निकालना जरूरी था और इसके लिए साधना और शक्ति की आवश्यकता थी। इसकी तैयारी के लिए सिद्धार्थ गौतम को तत्कालीन सभी पन्थों के अध्ययन और अभ्यास कर लेने की आवश्यकता महसूस हुई। अतः सर्वप्रथम समाधि मार्ग के अध्ययन और अभ्यास के लिए वे ध्यानाचार्य आलार कालाम से, जो उन दिनों वैशाली में थे, मिलने गए। रास्ते में वे कुछ देर के लिए भृगु मुनि के आश्रम पर रुके। वहाँ उन्होंने मुनियों को तरह-तरह के कष्टदायी तपस्या करते देखा। भृगु ऋषि ने उन्हें तपस्याओं के रहस्य तथा उन से प्राप्त होने वाले फलों से अवगत कराया। उन्हें लगा कि इस मार्ग द्वारा वे अपनी समस्या को हल नहीं कर पाएंगे। फिर वे आलार कालाम से मिले और उनसे ध्यान की सात पद्धतियाँ सीख लीं। उसके बाद वे उद्यक रामपूत से मिले और उनसे योगाभ्यास का अध्ययन सीखा जो उनसे एक सीढ़ी आगे था। उसके बाद वह मगध आकर वहाँ के योगाभ्यास का

अध्ययन का अभ्यास किया जो कौशल जनपद में प्रचलित समाधि मार्ग से भिन्न था।

गौतम गया आए और वहाँ राजर्षि नगरी के आश्रम में, जो उरुवेला में था रहने का निश्चय किया। वहीं निरंजना नदी के पास एक एकान्त स्थान पर उन्होंने घोर तपस्या आरंभ की। उस दौरान एक ऐसा भी समय आया जब उनके शरीर में हिलने-डोलने की भी शक्ति नहीं रही। उसी समय गृहस्थ सेनानी की पुत्री सुजाता, जो पुत्र प्राप्ति के उपलक्ष्य में, निग्रोध वृक्ष को खीर चढ़ाने आयी थी, वहाँ बैठे गौतम को साक्षात् वृक्ष देवता मानकर उन्हें सोने की कटोरी में खीर अर्पित की।

सिद्धार्थ गौतम को खीर खाने के बाद शक्ति आयी। अब उन्होंने देखा कि उनके द्वारा अपनाए गये सभी मार्ग व्यर्थ साबित हुए, पर वे निराश नहीं हुए। चालीस दिन के लिए भोजन एकत्रित कर गया राजमार्ग के पास, एक पीपल के पेड़ के नीचे, इस निश्चय के साथ जा बैठे कि वे बोधि प्राप्त करके ही उठेंगे। चौथे सप्ताह के अन्त में सिद्धार्थ को ज्ञान प्राप्त हुआ। इन्हें स्पष्ट हुआ कि मनुष्य के दुःख और क्लेश का निवारण पंचशीलों-हिंसा न करना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना, असत्य न बोलना तथा नशीली चीजों का प्रयोग न करना और आष्टंगिक मार्ग-सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मात्, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम तथा सम्यक स्मृति के द्वारा ही हो सकता है तब से बोधिसत्व गौतम सम्यक सम्बुद्ध हो गये। जिस पेड़ के नीचे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था यह बोधि वृक्ष कहलाया।

काफी सोच विचार के बाद बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार करने का निश्चय किया। वे गया से चलकर सारनाथ आये और अपने पाँचों पुराने रूष्ट साथियों के समक्ष धर्मचक्र का प्रवर्तन आरंभ किया। भूमि उपजाऊ मिली और इस देश में ही नहीं बल्कि अनेक छोटे-बड़े देशों में बौद्ध धर्म छा गया।

विश्व के अधिकतर धर्म दीन दुखियों के प्रति करुणा का उपदेश देते हैं। बौद्ध धर्म ने भी यही किया और साथ ही कुछ और भी। इसमें सभी को रूप, रंग, नस्ल, जाति और वर्ण की भिन्नता के बावजूद समानता का दर्जा दिया गया है। इसके लिए महामानव बुद्ध ने अनेक साहसिक और क्रान्तिकारी कदम उठाये। उन्होंने वेदों की चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को आदर्श सामाजिक व्यवस्था मानने से इन्कार कर दिया। ब्राह्मण धर्म के चार वर्णों-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में तीन ऊपरी वर्णों को ही ज्ञान प्राप्ति का अधिकार था। शूद्रों, सभी चारों वर्णों की स्त्रियों और अछूतों को कतई नहीं। यही नहीं इन्हें यानी शूद्रों, स्त्रियों तथा अछूतों को चार आश्रमों ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास में से केवल गृहस्थ आश्रम में ही प्रवेश करने का अधिकार था अन्य में नहीं। भगवान बुद्ध ने इस व्यवस्था को टुकरा कर सभी को समान अधिकार और अवसर दिये। समानता के अधिकार स्थापित करने के लिए बुद्ध ने कई और कदम उठाये। अपने भिक्षुसंघ में उन्होंने जाति और सामाजिक स्तर को कोई स्थान नहीं दिया। उन्होंने बताया कि सभी अपने कर्मों द्वारा ही बड़े छोटे बनते हैं। जाति व्यवस्था पर कुठाराघात करने के लिए शाक्यमुनि ने भिक्षु वृत्ति को भिक्षुओं के लिए अनिवार्य बनाया। भिक्षु भीख में मिले भोजन पर ही निर्भर करते थे और वह किसी भी जाति का हो सकता था। प्रसंगवश यहाँ बताया जा सकता है, कि भगवान बुद्ध ने अपना अंतिम भोजन चुन्द नामक सुनार के घर से लिया था।

जन्म से अपने को श्रेष्ठ मानने वाले ब्राह्मणवादियों को शाक्य सिंह ने मुहत्तोड़ उत्तर दिया था। कई अवसरों पर उन्होंने कहा कि शरीर की रचना और जन्म की प्रक्रिया में एक ब्राह्मण और चंडाल में कोई भेद नहीं है। सुत्तनिपात के ब्राह्मण धार्मिक सुक्त में बुद्ध ने कहा है, स्वर्ण और राख में बहुत स्पष्ट भेद है? लेकिन ब्राह्मण का जन्म आग की तरह सूखी लकड़ी के घर्षण से नहीं हुआ। यह आकाश या वायु से नहीं टपका, न ही पृथ्वी का फोड़ कर निकला। ब्राह्मण का जन्म माता की कुक्षि से उसी

प्रकार हुआ जिस प्रकार का चंडाल का। सभी मनुष्यों की शारीरिक रचना अवश्य बिल्कुल समान हैं-“थोड़ा सा भी फर्क नहीं है। अन्य स्थानों पर यही बात कही गयी है। एक दिन अश्वलायन नामक ब्राह्मण बुद्ध के पास आया और कहा कि ब्राह्मण ही उच्च है पवित्र है, ब्रह्मा के और पुत्र हैं, उनके मुख से उत्पन्न, उनके रचे हुए तथा उनके उत्तराधिकारी है। अन्य किसी जाति के लोग नहीं। अश्वलायन को उत्तर देते हुए भगवान गौतम ने कहा-क्या ब्राह्मण-पत्नियाँ ऋतुमती नहीं होती, गर्भधारण नहीं करती और सन्तान का प्रसव नहीं करती। यह होते हुए भी क्या ब्राह्मण का यह कहना उचित है कि ब्राह्मण ही उच्च वर्ण के हैं?...ब्राह्मण की ब्रह्मा के सुपुत्र हैं...ब्राह्मण उसके उत्तराधिकारी हैं? (मज्झिम निकाय 2 पृष्ठ 85) इसी से मिलती-जुलती बात महामानव बुद्ध के ब्राह्मण भिक्षु बासेद्ध को दिये उत्तर में हैं जिसका उल्लेख दीघ निकाय 3 (पृष्ठ 75) में मिलता है।

ये क्रान्तिकारी विचार शब्दों तक ही सीमित नहीं रहे, कार्यों में भी परिणत हुए। महामानव बुद्ध ने राजाओ, महाराजाओं, वैश्यों और ब्राह्मणों के साथ-साथ अनगिनत दलितों, अछूतों तथा अपराध कर्मियों को बिना किसी हिचक के धर्म में दीक्षित कर लिया। इनमें सुणीत नामक भंगी, सोपाक और सुप्पय डोम, प्रकृति नाम की चंडाल-कन्या, आम्रपाली जैसी वेश्या, उपालि (नाई), धनिम (कुम्हार), सती (मल्लाह) प्रमुख हैं। अंगुलिमाल जैसे हत्यारे तथा सैकड़ों अन्य अपराध कर्मियों को धर्म तथा अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से सुधार कर वे सदमार्ग पर लाये। इनमें कई स्थविर तथा अर्हत को प्राप्त हुए और उपालि ने तो विनय पिटक जैसे महान ग्रन्थ का संकलन किया।

वैदिक काल में स्त्रियों का स्थान बहुत अच्छा नहीं था। वे गुरुकुलों में छात्र और शिक्षक के रूप में प्रवेश नहीं पाती थी। वेदों का अध्ययन नहीं करती थीं। वे ब्रह्मचर्य आश्रम में दाखिला नहीं ले सकती थीं और उपनयन भी नहीं ग्रहण करती थी। आर्य व्यवस्था में उनके सामाजिक स्तर में काफी गिरावट आ गई थी।

महामानव बुद्ध ने स्त्रियों के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने नारियों को अपने धर्म में दीक्षित किया और भिक्षुणी संघ की स्थापना की। अलग से भिक्षुणी संस्था गणित करने और भिक्षुसंघ की देख-रेख में इसके काम करने के कुछ व्यावहारिक कारण थे। वैसे बुद्ध स्वयं स्त्रियों को बौद्धिकता और आचरण में पुरुषों से कम नहीं मानते थे। सन्यास ग्रहण करने की इन्हें स्वतंत्रता देकर बुद्ध ने स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष ला खड़ा किया। बुद्ध के इस कदम को क्रान्ति और स्त्रियों के लिए आजादी निरूपित करते हुए मैक्समूलर ने अपने हवर्ट लेक्चर में कहा है कि ब्राह्मणी कानून की कष्टदायी बेड़ियाँ छिन्न-भिन्न हो गयीं और स्त्रियों को व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त हो गयी। आध्यात्मिक स्वतंत्रता की इच्छा होने पर सामाजिक रूकावटों से ऊपर उठकर वे इसकी प्राप्ति के लिए जंगलों में जाने के लिए पूर्ण स्वतंत्र थी। अपने थेरी गाथा की भूमिका में राइस डेविड्स ने कहा है कि अपने धर्म में दीक्षित करने के लिए भगवान बुद्ध ने शर्त नहीं रखी कि स्त्रियों का कुआँरी होना जरूरी है। सभी स्त्रियों, विवाहित, अविवाहित, विधवा यही नहीं वैश्याओं के लिए भी उन्होंने अपने धर्म के दरवाजे खोल कर रखे।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने कलकत्ता से प्रकाशित महाबोधी में छपे अपने “द राइज एण्ड फाल ऑफ हिन्दू विमेन” शीर्षक लेख में बुद्ध पर लगाये गये स्त्री विरोधी आरोपों का खण्डन करते हुए जो लिखा है उसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है- “उस व्यक्ति को स्त्री का तिरस्कार करने वाला कैसे कहा जा सकता है जो पुत्री के जन्म को शोक नहीं प्रसन्नता का अवसर मानता है, जो विश्वास रखता था कि जो परिवार एक सच्चरित्र स्त्री को सत्ता सौंपता है उसका पतन नहीं होता, जिसकी मान्यता थी कि औरत सात बहुमूल्य निधियों में से एक है और जो समझता था कि स्त्री एक सर्वोत्कृष्ट सम्पत्ति है।”

समाज का तीसरा दलित और शोषित तबका

खेतीहर मजदूरों का है जो शिक्षा और संगठन शक्ति के अभाव में अपने न्यायसंगत और विधि सम्मत माँगों को भी प्राप्त नहीं कर पाता। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक, "बुद्धा एंड हिज धम्मा" के प्रथम भाग में "आरंभि, प्रवृत्तियाँ" शीर्षक के अन्तर्गत जो इस सम्बन्ध में लिखा है वह इस बात का प्रमाण है कि सिद्धार्थ गौतम को इस उपेक्षित वर्ग के प्रति कितनी सहानुभूति थी।

एक दिन सिद्धार्थ गौतम अपने कुछ साथियों के साथ अपने पिता के खेत पर गये। वहीं उन्होंने देखा कि खेतीहर मजदूर जिनके पास तन ढकने के लिए पर्याप्त कपड़े भी नहीं हैं, कड़ी धूप में खेत फोड़ रहे हैं और बांध बांध रहे हैं। सिद्धार्थ, जो मानव द्वारा मानव के शोषण के विरुद्ध थे, इस दृश्य को देखकर द्रवित हो उठे। उन्होंने अपने एक मित्र से कहा, एक आदमी दूसरे का शोषण करे क्या इसे ठीक कहा जायेगा? मजदूर मेहनत करे और मालिक उसकी कमाई पर गुलछरे उड़ाये यह कैसे ठीक हो सकता है?

महामानव बुद्ध कर्मकांड तथा बाह्य आडम्बर के सख्त खिलाफ थे। चमत्कार, अलौकिक शक्ति, मुहूर्त निकालने की प्रवृत्ति, फलित ज्योतिष में उनका विश्वास नहीं था। उल्का-पतन और स्वप्न को वे शुभ-अशुभ नहीं मानते थे। सारनाथ में अपने पाँचों पुराने भिक्षु साथियों के समक्ष प्रथम धर्म-चक्र प्रवर्तक में उन्होंने कहा था, मौस-मछली से परहेज करने, नंगा रहने, सिर मुड़ाने, जटा बढ़ाने, खुरदरा पोशाक धारण करने, शरीर पर कीचड़ लपेटने एवं यज्ञ करने से भ्रष्ट मनुष्य पवित्र नहीं हो सकते वेद पढ़ने, पुरोहितों को दान-दक्षिणा देने,

देवताओं को बलि चढ़ाने, सर्दी-गर्मी में आत्मदमन तथा अमर होने के अवसर पर तथागत ने कहा था, "कर्मकांडों में कोई क्षमता नहीं, प्रार्थनाएं व्यर्थ हैं और जादू-टोना, झाड़ू-फूँक में बचाव करने की शक्ति नहीं।" ये उद्धरण पाल कास्त की पुस्तक "द गास्पल आफ बुद्धा" से संबंधित अंश का हिन्दी रूपान्तर है।

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने विश्व और इस देश को महामानव बुद्ध की देन के सम्बन्ध में अपनी पुस्तक "डिस्कवरी ऑफ इंडिया" (पृ. 120) में लिखा है, उसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है, "लोक प्रचलित धर्म, अन्ध विश्वास, कर्मकांड, और पुरोहित प्रपंच तथा इनसे जुड़े निहित स्वार्थों पर प्रहार करने का साहस बुद्ध में था। ब्रह्म-वैज्ञानिक एवं अभौतिक दृष्टिकोण, चमत्कार, रहस्योदघाटन, तथा अलौकिक शक्तियों को प्रभावित करने की भी उन्होंने भर्त्सना की थी। उनका आग्रह तर्क, विवेक और अनुभव के प्रति एवं नैतिकता पर जोर तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का था-ऐसा मनोविज्ञान जिसमें आत्मा का कोई स्थान नहीं था। बासी और घिसी-पिटी ब्रह्मवैज्ञानिक चिन्तन की तुलना में उनका मार्ग पहाड़ों से आती हवा के समान था।"

फिर भी यह एक कठोर सत्य है कि महामानव बुद्ध ने प्रतीत्यसमुत्पाद यानि क्षणिकवाद के अपने क्रांतिकारी सिद्धांत को आर्थिक व्यवस्था पर लागू नहीं किया। शायद यह कालपूर्व होता। बौद्ध धर्म के प्रकांड विद्वान राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुस्तक बौद्ध दर्शन में लिखा है- 'समाज में आर्थिक विषमता को अक्षुण्ण रखते (बुद्ध ने) वर्ण-व्यवस्था, जातीय ऊँच-नीच के भाव को हटाना

चाहा था, जिससे वास्तविक विषमता तो नहीं हटी, किन्तु निम्न वर्ग का सद्भाव जरूर बौद्ध धर्म की ओर बढ़ गया।" इसके अतिरिक्त पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धान्त को भी बुद्ध ने किसी न किसी रूप में स्वीकारा। यही कारण है कि हम "बुद्ध" के झंडे के नीचे बड़े-बड़े राजाओं, सम्राटों, सेठ-साहूकारों को आते देखते हैं, और भारत में बाहर-श्रीलंका, चीन, जापान, तिब्बत में तो उनके धर्म को फैलाने में राजा और व्यापारी सबसे पहले आगे बढ़े।

राहुल सांकृत्यायन ने महावग्गा से उद्धरण देकर अपनी उपरोक्त पुस्तक में बताया है कि महाजनों और दास स्वामियों को शान्त करने के लिए बुद्ध ने ऋणी और दासों को प्रव्रज्या देने पर रोक लगा दी थी। यही नहीं जब मगध राजा बिम्बिसार के सैनिक युद्ध में जाने की जगह भिक्षु बनने लगे और राजा ने बुद्ध से शिकायत की तो बुद्ध ने कहा "भिक्षुओं राजसैनिकों को प्रव्रज्या नहीं देनी चाहिए।"

भगवान बुद्ध का परिनिर्वाण ई. पू. 483 में रात्रि के तीसरे पहर कुशीनगर में हुआ था। उस दिन वैशाख पूर्णिमा थी। बौद्धों की मान्यता है कि भगवान बुद्ध का जन्म और ज्ञान प्राप्ति भी वैशाख पूर्णिमा को ही हुई थी। इसी कारण बौद्ध जगत में इस तिथि का विशेष महत्व है।

सामार :

भारत के सामाजिक क्रान्तिकारी

पेज संख्या 16 से 21 तक

देवेन्द्र कुमार बेसन्तरी

संविधान दिवस के उपलक्ष्य में संगोष्ठी का आयोजन



आज दिनांक 26.11.2021 को भारतीय जीवन बीमा निगम मंडल कार्यालय के गेट पर अखिल भारतीय अनुसूचित जाति, अनु. जनजाति एवं बुद्धिस्ट भा.जी.बी. निगम कर्मचारी कल्याण संघ कानपुर के तत्वाधान में 26 नवंबर संविधान दिवस के उपलक्ष्य में संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें श्रद्धेय हरि नाथ कुमार क्षेत्रीय महासचिव ने संविधान की मूल भावना पंथ निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए समता मूलक समाज की स्थापना करना जरूरी है। सभी ने संविधान की प्रस्तावना को पढ़ कर संविधान के अनुसार चलने की निगम के अधिकारियों/कर्मचारियों ने शपथ ली। साथ ही साथ स्टाल लगाकर प्रातः 10:30 से शाम 4:00 बजे तक आम जनमानस को चाय, बिस्कुट व पानी का वितरण किया गया। संगोष्ठी का शुभारम्भ भारतीय जीवन बीमा निगम के श्रद्धेय एम.आर.शर्मा वरिष्ठ मंडल प्रबंध जी द्वारा किया गया सभा में श्रद्धेय जगजीवन राम, श्रद्धेय संतोष कुमार, विनोद कुमार, राम अवध, रघुनन्दन प्रसाद, अवधेश प्रसाद जी, रवि मोहन सोनकर, राकेश कुमार, प्रमोद कुमार, सुरेंद्र गौतम, ललित कुमार सोनकर, सतीश संखवार, अजय कुमार, राजेन्द्र प्रसाद एवं अन्य निगम के बहुत से साथी शामिल हुए।

बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी के महा परिनिर्वाण दिवस पर श्रद्धांजलि



सेवा में,

नाम

पता

.....

.....

अखिल भारतीय अनुसूचित जाति, जनजाति एवं बुद्धिष्ट भारतीय जीवन बीमा निगम कर्मचारी कल्याण संघ कानपुर की ओर से परम पूज्य बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी के महा परिनिर्वाण दिवस पर श्रद्धांजलि सभा एवं बहुजन जागरूकता चर्चा का आयोजन दिनांक 06.12.2021 को समय दोपहर 1.31 बजे से एल आई सी स्पोर्ट्स हाल में किया गया। जिसमें कल्याण संघ के संरक्षणक श्री देवराज जी, क्षेत्रीय महासचिव हरिनाथ कुमार जी व कल्याण संघ के अन्य साथी जगजीवन राम, विनोद कुमार, प्रमोद कुमार, संतोष कुमार, रघुनंदन प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद, डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद, राम अवध, सतीश संखवार, अजय कुमार, अशोक कुमार गौतम, अर्जुन कुमार, वीरेंद्र कमल, राम कुमार, शिव कुमार आदि साथी उपस्थित रहे।



दिनांक 18 दिसंबर दिन शनिवार को अखिल भारतीय अनुसूचित जाति, जनजाति एवं बुद्धिष्ट भारतीय जीवन बीमा निगम कर्मचारी कल्याण संघ कानपुर इकाई का वार्षिक अधिवेशन एल आई सी बिल्डिंग, क्षेत्रीय कार्यालय स्पोर्ट्स हाल में सम्पन्न हुआ। वार्षिक अधिवेशन में मुख्य अतिथि के रूप में श्री एम. आर. शर्मा (वरिष्ठ मंडल प्रबंधक कानपुर), श्री सी. एल. कुरील (अखिल भारतीय सचिव विधि) कल्याण संघ तथा मुख्य वक्ता श्री बुद्ध मित्र मुसाफिर (सहायक आयुक्त आयकर विभाग), श्री हरिनाथ कुमार (क्षेत्रीय महासचिव) कल्याण संघ के सानिध्य व मार्गदर्शन में संपन्न हुआ अधिवेशन के उपरांत कानपुर मंडल इकाई को संविधानिक तरीके से भंग कर, चुनाव कराकर नई कार्यकारिणी का गठन किया गया।

उक्त अधिवेशन में मुख्य वक्ता श्रद्धेय बुद्ध मित्र मुसाफिर जी ने डिप्रेस्ड (अछूतों) क्लास के लोगों की भारत में स्थिति पर विस्तृत चर्चा की। आरक्षण कोई भीख नहीं यह गोलमेज सम्मेलन का वादा है प्रतिनिधित्व एवं उसका संरक्षण तथा हम सबका दायित्व आदि विभिन्न बिंदुओं पर बुद्धजीवी साथियों ने विस्तृत चर्चा की। श्रद्धेय बुद्ध मित्र मुसाफिर जी के गहन ज्ञान व अध्ययन को लोगों ने बहुत ही ध्यान पूर्वक शांतिपूर्ण तरीके से सुना। श्रद्धेय मुसाफिर जी ने इस अधिवेशन में इतिहास से संकलित एक पुस्तक “आरक्षण का प्रतिनिधित्व एवं उसका संरक्षण हम सबका दायित्व” सभी को भेंट की।

कार्यक्रम में कानपुर क्षेत्रीय/मंडली इकाई के पदाधिकारी-जगजीवन राम, संतोष कुमार, प्रमोद कुमार, ओम प्रकाश, वेदपाल आजाद, राकेश कुमार, प्रमोद कुमार, मानिकचंद, ललित कुमार सोनकर, राम आसरे, स्वतंत्र कुमार, सत्येंद्र कुमार सिंह, रमाशंकर, राम अवध, रघुनंदन प्रसाद, धनेश कुमार, अवधेश कुमार, प्रेम सिंह, राम भरत, जेपी भारती, सी पी वर्मा, विश्राम लाल, जय श्री लाल, हरिश्चंद्र, रमेश वर्मा, योगेंद्र कुमार, योगेंद्र पाल, संतराम, रणधीर राज, सुशांत सोनकर, देवराज, एके जयंत, आदि साथी उपस्थित रहे। अधिवेशन में लगभग 120 सहयोगी उपस्थित रहे। अधिवेशन प्रातः 10 से शुरू होकर शाम 7:15 पर संपन्न हुआ। अधिवेशन में मुख्य अतिथियों, मुख्य वक्ताओं व सम्मानित जनों को पुष्पमाला पहनाकर, अंगवस्त्र (शाल) दान कर सम्मानित करने के साथ ही साथ कल्याण संघ की मंडलीय इकाई की ओर से अपने सभी सहयोगी साथियों को मोमंटो के रूप में एक-एक बैग भी भेंट किया गया। अधिवेशन में सभी लोगों ने बड़ी ही शिद्दत से अपनी भागीदारी सुनिश्चित की। नई चुनी गई मंडलीय कमेटी में, अध्यक्ष-श्री जगजीवन, कार्यकारी अध्यक्ष- प्रमोद कुमार, उपाध्यक्ष- सुरेंद्र कुमार गौतम, महासचिव- संतोष कुमार, सचिव प्रशासन-रघुनंदन प्रसाद, सचिव संगठन- ओमप्रकाश कुरील, धनेश कुमार, ललित कुमार सोनकर, सचिव प्रचार- राकेश कुमार, स्वतंत्र कुमार, रवींद्रनाथ सचिव संपर्क- रमेश वर्मा, सचिव विधि- श्रीमती गीता रावत, कोषाध्यक्ष-रामअवध, सह कोषाध्यक्ष- संत कुमार आदि साथी सर्वसम्मति से चुने गए।